हमें नेक क्यों बनना चाहिए ?

लेखक : प्रिंसिपल पी वी कनल

भूतपूर्व प्रधानाचार्य देव समाज कॉलेज फिरोजपुर

विषय प्रवेश

देव समाज का मुख्य कार्य मानव हृदयों में उच्च वा सात्विक भावों को विकसित करना है । देव समाज का विश्वास है कि मनुष्य सम्बन्धों की समस्या का हल केवल मात्र उपरोक्त उच्च भावों के विकास या चरित्र निर्माण में निहित है । मनुष्य को इस महान सत्य की अनुभूति की आवश्यकता है कि वह मनुष्य जगत का ही एक अंग है, अतः मनुष्य जगत के सम्बन्ध में उसके लिए कुछ ऐसे निश्चित कर्त्तव्यों का पालन करना आवश्यक है, कि जिनके सन्तोष जनक पालन से न केवल वह संसार के दुखों को घटाने का हेतू होगा, अपितु वह अपनी आत्मा के कल्याण की ओर भी अग्रसर हो सकेगा । मनुष्य के जीवन का लक्ष्य केवल आर्थिक तथा राजनैतिक समस्याओं का हल कर लेना ही नहीं है । जैसा कि मनुष्य के जीवन या उसकी गठन से प्रकट होता है; उसका लक्ष्य है कि वह अपने सारे अस्तित्व के विषय में ज्ञान पाए; समस्त विनाशकारी भावों से मोक्ष पाये कि जो उसे औरों के उचित अधिकारों को पांव तले रौंदने और इस प्रकार सत्य और शुभ का गला घोंटने के लिए बाध्य करते हैं, तथा अपने हृदय में ऐसे उच्च सात्विक भावों को विकसित करे कि जिनकी तृप्ति दूसरों की भलाई तथा विश्वगत सम्बन्धों में सत्य एवं शुभ के पथ पर गमन करने में है ।

उपरोक्त मूल लक्ष्य को ही अपने श्रेष्ठ कार्य का आधार अनुभव करते हुए देव समाज मानव जीवन का शिशु अवस्था से वृद्धा अवस्था तक अनुशीलन करती है । देवसमाज के सब स्कूल और कालिजों का सर्वोच्च लक्ष्य मानव हृदय में ऐसे सात्विक वा उच्च बोधों को विकसित करना है । इस नितान्त आवश्यक कार्य के लिए एक पूरा पीरियड (Period) रोज़ दिया जाता है ।

जनता में यह जानने के लिए उत्कण्ठा पाई जाती है कि हम इस नियत समय में क्या शिक्षा देते हैं । अतः हमने सदाचार सम्बन्धी कुछ लैक्चरों का जो हम अपनी संस्थाओं में देते रहे हैं, संकलित करने का निश्चय किया है ।

प्रथम दस लैक्चर पाठक-गण के सम्मुख पुस्तक के रूप में उपस्थित किये जाते हैं, शेष इसके पश्चात् प्रकाशित होंगे । हमें विश्वास है कि यह पुस्तक चरित्र निर्माण के सर्वोत्तम क्षेत्र में अत्यन्त उपयोगी प्रमाणित होगी, विशेषकर बालक-बालिकाओं के लिए जिनके जीवन को यह नाना सम्बन्धों में स्पर्श करती है ।

12 अप्रैल, 1940 — पी. वी. कनल

1. दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करो, जैसा तुम अपने साथ चाहते हो ।

एक विद्यार्थी — (शिक्षक से) क्या कृपया आप हमें बतलाएँगे कि हमें भले लड़के क्यों बनना चाहिए ?

शिक्षक — भले बनने के पक्ष में अनेकों दलीलें हैं, परन्तु बुरे बनने के पक्ष में एक भी नहीं ।

विद्यार्थी —क्या आप कृपा करके कुछ दलीलें देंगे ?

शिक्षक—एक दलील तो यह है कि "हमें दूसरे के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए, जैसा कि हम अपने साथ चाहते हैं । मैं इसे स्पष्ट किए देता हूँ । यदि आपकी कोई क़ीमती वस्तु चोरी हो जाए, तो क्या आप प्रसन्न होंगे ?

विद्यार्थी — कदापि नहीं ।

शिक्षक—हम अपनी क़ीमती चीजों की चोरी इसलिए नहीं चाहते, क्योंकि उससे हमें बहुत दुख होता है । इसी प्रकार दूसरों को भी अपनी क़ीमती चीजों की चोरी हो जाने से दुख होता है । मैं आप को एक घटना बताता हूँ । एक भिखारिन ने पैसा-पैसा करके बचाए हुए कुछ रुपये अपने आंचल में बाँध रखे थे । जब वह सड़क के किनारे सो रही थी, तो एक जेबकतरे ने उसकी गाँठ कतर ली । जब वह ग़रीब भिखारिन जागी और उसको पता लगा कि उसकी सारी कमाई चोरी हो गई है, तो वह दुख से तड़प कर भूमि पर लोटने और कातर होकर रोने लगी । इर्द-गिर्द के लोगों से यह दृश्य देखा नहीं जाता था । उन में से कुछ व्यक्तियों ने उसे कुछ रुपया दिए भी, परन्तु वह पैसे उसके नहीं थे । इसलिए वह घण्टों तक दुःख से तड़पती रही । ओह ! उस चोर ने कितना दारुण दुःख उस गरीब भिखारिन को पहुँचाया । यदि हम कल्पना-शक्ति के द्वारा उसके दुःख का अनुमान कर सकें, और अपने आपको उसकी अवस्था में अनुभव कर सकें, तो हमारे लिए चोरी करना प्रायः असम्भव हो जाएगा । यह बड़े खेद की बात है कि लोग ऐसे हृदय-विदारक दृश्य देखकर भी कोई शिक्षा ग्रहण नहीं करते ।

विद्यार्थी —हाँ, अब मेरी समझ में आ गया कि चोरी क्यों खराब है । इससे दूसरों को अनुचित यंत्रणा होती है । मुझे पता है कि जब मेरी किताब चोरी हो गई थी, तो मुझे कैसा आघात लगा था । परन्तु मेरे दुःख ने मुझे सिखा दिया कि मुझे चोरी नहीं करनी चाहिए । क्या ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो ऐसे कड़वे तजरबे से भी कुछ नहीं सोखते ?

शिक्षक—हाँ ! लाखों आदमी हैं जो अपने निजी अनुभव से भी कुछ नहीं सीखते । एक तहसीलदार की अपनी तहसील से बाहर कुछ ज़मीन थी, जिसके सम्बन्ध में उसे वहां के पटवारी से कुछ काम करवाना था । पटवारी ने रिश्वत मांगी । तहसीलदार को बहुत क्रोध आया और उसने पटवारी से कहा कि क्या तुम नहीं जानते कि मैं तहसीलदार हूँ ? पटवारी ने कहा कि आप बेशक तहसीलदार हैं, परन्तु क्या आप रिश्वत नहीं लेते ? यदि रिश्वत आपके लिए ठीक हो सकती है तो मेरे लिए क्यों नहीं ? यदि आप अपना काम करवाना चाहते हैं तो आपको मुझे रिश्वत देनी ही होगी । मैं जानता हूँ कि वह तहसीलदार पक्का रिश्वतखोर था । फिर भी उसने पटवारी को गालियां देने का साहस किया । एक चोर समझता है, कि उसे तो चोरी करने और दूसरों को विपदग्रस्त करने का अधिकार है, परन्तु दूसरे उसके सम्बन्ध में ईमानदार ही रहें । अतः ऐसे भी आदमी हैं कि जो कभी अपने अनुभव से भी नहीं सीखते । ऐसे मनुष्य महा पतित होते हैं ।

विद्यार्थी —आपने केवल बेईमानी के उदाहरण दिए हैं । क्या अन्य नाना प्रकार के पाप कर्मों और अपराधों के उदाहरण भी देने की कृपा करेंगे ?

शिक्षक —अवश्य ! मैं आपको कुछ सच्ची घटनाए सुनाऊंगा । केवल पन्द्रह दिन पहले जब मैं अपने एक साथी के साथ सड़क पर जा रहा था तो एक साईकल सवार मेरे पास से गुजरा । उसने मेरे साथी को प्रणाम किया । मेरे साथी ने मुझे बताया, कि यह व्यक्ति उन कृपा-पात्र नीच आत्माओं में से है कि जो अपने कटु अनुभवों से भी कुछ नहीं सीखते । यह आदमी अपने गांव के एक प्रतिष्ठित परिवार की लड़की को अपने साथ भगा ले गया था । इसे अपना गांव छोड़ना पड़ा । उसकी लगातार और लम्बी अनुपस्थिति में इसकी अपनी जवान बेटी एक दुष्ट जन के साथ भाग गई । ज्योंही इस अधम आत्मा को पता लगा कि इसकी अपनी बेटी को कोई भगा ले गया है, तो यह फूट-फूट कर रोने लगा । यह गया और अपनी लड़की को घर वापिस ले आया ।

परन्तु यह कटु अनुभव हो जाने पर भी, कि उसकी लड़की के भगा ले जाने से उसका दिल किस प्रकार टुकड़े-टुकड़े हो गया था, यह दूसरों के घरों को उजाड़ने का अपराध बराबर करता रहा । जब मैंने यह घटना सुनी तो मुझे हार्दिक दु:ख हुआ कि किस प्रकार कुछ आदमी इतने विकृत हो जाते हैं, कि वे दूसरों पर वही अत्याचार करते हैं कि जो वे अपने लिए नहीं चाहते ।

विद्यार्थी –परन्तु क्या ऐसे आदमी हैं ही नहीं, जो अपने अनुभवों से कुछ सीखते हों ?

शिक्षक–हाँ ! कुछ आदमी अवश्य ऐसे होते हैं । और वह दो प्रकार के होते हैं । एक तो वे, कि जो अपराध करने का साहस ही नहीं करते, परन्तु ऐसे व्यक्ति सदाचारी नहीं होते दूसरे वे हैं जो उच्च परिवर्तन लाभ करके सदाचारी बन जाते हैं ।

विद्यार्थी –क्या आप इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों के कुछ उदाहरण देने की कृपा करेंगे ?

शिक्षक–बेशक ! एक नवयुवक की यह आदत थी कि वह रात को अपने मकान की सब से ऊँची मंजिल पर चढ़कर वहाँ से अपनी टार्च की रोशनी उन स्त्रियों पर डालता था जो पड़ोस के मकान की छतों पर सोती थीं । वह विवाहित था । फिर भी वह दूसरों की इज्जत का लिहाज नहीं रखता था । पड़ोसियों ने उससे इस घृणित आदत को छोड़ देने की प्रार्थना की । परन्तु क्योंकि वह पड़ोसियों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली था, इसलिए उसने उनकी प्रार्थना की कोई परवाह न की । इन गरीब आदमियों ने अपने कुछ शक्तिशाली पड़ोसियों से इसकी शिकायत की । यह प्रतिष्ठित पड़ोसी भी इस नौजवान के पास गए और उसे समझाया, परन्तु वे यह देख कर दंग रह गए कि नौजवान पर उनके समझाने का कुछ असर न हुआ । यह नवयुवक सवेरे दस बजे से शाम के चार बजे तक घर के बाहर अपने काम पर होता था । इसी बीच कुछ पड़ोसियों ने अपने मकानों की छतों पर चढ़कर इस युवक की पत्नी के साथ भी ऐसा ही व्यवहार करके उसको तंग करना आरम्भ किया । वे उसकी पत्नी को गालियाँ देते और बाहर आने को कहते और जब वह बाहर बैठी होती तो यह पड़ोसी खड़े होकर उसे ताकने लग जाते । दो-तीन दिन के बाद उस स्त्री ने अपने पति से इस बात की शिकायत की । ऐसा प्रतीत होता है कि पड़ोसियों के इस व्यवहार से इस चरित्रहीन युवक को कुछ होश आ गया । वह अपने पड़ोसियों के पास पहुंचा, और उनसे कहा कि वह अपनी छतों पर खड़े होकर उसकी पत्नी की ओर न देखा करें । उन्होंने उत्तर दिया कि हमें अपनी छतों पर खड़े होने का पूरा अधिकार है । तुम जो कर सकते हो, करो । जब उस नवयुवक ने सब पड़ोसियों को अपने विरुद्ध पाया, तो उसे अपना मकान बदलना पड़ा । परन्तु यद्यपि उसे पड़ोस छोड़ देना पड़ा, तो भी उसे अपना व्यवहार फिर भी अनुचित प्रतीत न हुआ । हाँ, उसने इतना सबक़ अवश्य सीख लिया कि अच्छा पड़ोसी बनने के लिए अपने पड़ोसियों के भावों का सम्मान करना आवश्यक है ।

विद्यार्थी –मैं इस घटना से बहुत प्रभावित हुआ हूँ । शोक कि उस युवक ने अपने दुष्ट स्वभाव को नहीं छोड़ा । परन्तु इतना भी अच्छा हुआ, कि उसे अच्छा पड़ोसी बनने का सबक़ मिल गया । मुझे अनुभव हुआ है कि यदि किसी को शान्ति-पूर्वक रहना है, तो उसके लिए अच्छा पड़ोसी बनना आवश्यक है । क्या कृपा करके आप ऐसे व्यक्तियों के भी उदाहरण देंगे कि जो अपने कड़वे तजरबे से अपना बुरा स्वभाव छोड़कर सदाचारी बन जाते हैं ?

शिक्षक – हाँ, इस विषय में मैं आपको एक विवाहित बैरिस्टर की घटना बताता हूँ, जो दुराचारी था । जब वह अदालत से वापिस आता था तो सीधा एक कुटिल स्त्री के पास चला जाता था और रात को बहुत देर से घर पहुँचता था । उसे यह कभी अनुभव नहीं हुआ कि वह अपनी पत्नी के प्रति बेवफ़ा है । और उसके हृदय को घायल कर रहा है । पत्नी उसके इस आचरण से अत्यन्त दु:खी थी । पति की बेवफ़ाई उसे लगातार दुखी रखती थी। एक दिन उसने एक निश्चित क़दम उठाने की ठानी । ज्योंही उसका पति रात्रि को देर से आया उसने एक लालटेन ली और घर के दरवाजे की तरफ चल दी। और जब पति ने पूछा तुम कहाँ जा रही हो, तो उत्तर दिया कि मैं भी उसी प्रकार मौज बहार करने जा रही हूं, जिस प्रकार कि तुम करके आए हो । पति चकित रह गया और क्रोधित होकर बोला, "क्या तुम इतनी भी निर्लज्ज हो सकती हो ?" पत्नी ने जवाब दिया, "एक निर्लज्ज पति की पत्नी से और क्या आशा हो सकती है ? मैं कोई अनोखी बात नहीं कर रही । आपको प्रसन्न होना चाहिए कि मैं आपके पद-चिन्हों का अनुसरण कर रही हूं ।" पति ने जब देखा कि उसकी पत्नी अपने निश्चय पर दृढ़ है, तो हाथ जोड़कर कहा कि दुनिया भर के उपदेश मुझे मेरी घृणित छवि नहीं दिखा सकते थे, परन्तु आपके शब्दों ने मेरी आँखें खोल दी हैं । अब आप विश्वास रखें कि आज से आप मुझे एक बदला हुआ मनुष्य पाएँगी । कृपया आप वापिस आ जायें अन्यथा हमारा घर उजड़ जाएगा ।" उस दिन से बैरिस्टर एक बहुत अच्छा पति बन गया । यह एक ऐसे व्यक्ति की कथा है कि जिसके भीतर भला बनने की योग्यता थी और इसीलिए वह दुराचारी से सदाचारी बन गया ।

लड़के इस उदाहरण से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने शिक्षक से कहा, "हम आपके कृतज्ञ हैं कि आपने सच्चे उदाहरण देकर हमारे हृदयों पर यह अंकित कर दिया है कि हमें दूसरों के साथ ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा कि हम दूसरों से चाहते हैं। हमारी यह आकांक्षा है कि आप हमें अन्य ऐसी बुराइयों के विषय में भी कुछ बताने कि कृपा करें, जिनसे उपरोक्त सिद्धान्त के अनुसार हमें बचना चाहिए।"

शिक्षक—मैं आपको अब विद्यार्थियों के जीवन के कुछ उदाहरण देना चाहता हूं। हमारे बोर्डिंग में एक बहुत लम्बे क़द का ताक़तवर स्वस्थ विद्यार्थी था। बोर्डिंग का यह नियम था कि जब कोई विद्यार्थी बीमार पड़ जाता तो दूसरे विद्यार्थी रात्रि को बारी बारी से उसकी सेवा करते थे। यह विद्यार्थी सदैव ही रात्रि को बीमार साथियों की सेवा करने से इन्कार कर देता था। एक दिन वह स्वयं बीमार हो गया। लड़के मेरे पास आकर कहने लगे कि वह लड़का जो सदा ही दूसरों की सेवा से इन्कार कर देता है, बीमार हो गया है। मैंने कहा कि उसकी तन मन से सेवा करो जिससे कि वह अनुभव कर सके कि एक रोगी के लिए साथियों की सेवा कितना बड़ा सहारा है। लड़कों ने एक दूसरे से बढ़-चढ़कर उसकी सेवा की। स्वस्थ होने पर वह नवयुवक मेरे पास आया और अश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ कहने लगा—"अब तक मैं पूरा स्वार्थ परायण रहा हूँ। मैंने यह कभी अनुभव नहीं किया कि हम परस्पर एक दूसरे की सहायता के कितने मुहताज है। मेरी अब तक की स्वार्थ-परता के लिए मुझे क्षमा कीजिए और आगे से मुझे सेवा का कठिन से कठिन काम दीजिए। दूसरों की सेवा करने की आवश्यकता का मुझे अब अनुभव हो गया है।" इस प्रकार यह नवयुवक अपनी स्वार्थ-परता से निकल आया। और आप यह जान कर प्रसन्न होंगे कि इसके बाद उसने सदैव बीमारों की सेवा में बढ़ चढ़कर भाग लिया। इस प्रकार कुछ व्यक्ति अपने तजरबे से सुधर जाते हैं।

विद्यार्थी —इस उदाहरण के लिए हम आपको धन्यवाद देते हैं। अब हमें स्पष्ट हो गया है कि अपने रोगी मित्रों तथा सम्बन्धियों की शुश्रूषा क्यों करनी चाहिए। क्या कृपया आप किसी और विद्यार्थी का भी उदाहरण देंगे ?

शिक्षक—हाँ ! मैं कितने ही विद्यार्थियों के उदाहरण दे सकता हूं, जिनको उनके निजी अनुभव ने सुधार दिया। सहशिक्षा की एक संस्था में एक नवयुवक को लड़कियों की ओर घूरने की बुरी आदत थी। कई लड़कियों ने इस पर आपत्ति भी उठाई, परन्तु निष्फल। संयोगवश अगले वर्ष उस नवयुवक की अपनी बहन उसी विद्यालय में प्रविष्ट हुई। उसने अपने इस भाई से शिकायत की कि कुछ लड़के उसे घूरते हैं। नवयुवक इस पर बड़ा क्रोधित हुआ, परन्तु उसे स्मरण हुआ कि वह भी इसी प्रकार से कुछ लड़कियों के लिए दुखदायी बना रहा है। यह स्मरण होना था कि उसे अपने किए पर पश्चाताप होने लगा। वह साहस करके उन लड़कियों के पास गया और क्षमा याचना की। समय के साथ वह एक आदर्श लड़का बन गया। वह और उसकी बहन विद्यालय में बहुत प्रतिष्ठित विद्यार्थी बन गए। यह नया परिवर्तन था जो उस नवयुवक के जीवन में आया। आपको याद रखना चाहिए कि जिस प्रकार आप अपनी माताओं व बहनों के प्रति दूसरों की तरफ से दुर्व्यवहार पसन्द नहीं करते, उसी प्रकार आपको भी दूसरों की माताओं और बहनों के प्रति दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिए। अब आप सोच सकते हैं कि यदि एक आदमी अपने आपको उस आदमी की अवस्था में अनुभव कर सके कि जिसके लिए वह क्लेशदायक बन रहा है, तो वह साधारणतः न केवल यह कि दूसरों को क्लेश नहीं देगा परन्तु सम्भव होने पर दूसरों के लिए सेवाकारी बन जायगा। मुझे आशा है कि आज की बातचीत से आप पर यह स्पष्ट हो जाएगा, कि हमें भला क्यों बनना चाहिए और बुरा क्यों नहीं बनना चाहिए।

2. दूसरों का ध्यान रखो

दूसरे दिन जब नीति शिक्षा के घण्टे में सब लड़के एकत्र हुए तो वातावरण कुछ बदला हुआ था । कुछ लड़के नए से नए प्रश्न करने के लिए बड़े उत्सुक जान पड़ते थे । उनमें से एक ने कहा कि इस सिद्धान्त के अनुसार कि "हमें दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए, जैसा कि हम अपने साथ चाहते हैं" सदाचारी बनने की जो शिक्षा आपने दी है, वह तो हमारी समझ में आ गई । क्या आप यह बताने की कृपा करेंगे कि इसके या अन्य किसी सिद्धान्त के अनुसार विविध सम्बन्धों में हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए ?

शिक्षक— हर्ष की बात है कि आप को इस विषय में दिलचस्पी है, इस विषय को कई तरीकों से समझाया जा सकता है । मैं आपको उदाहरण देकर समझाऊँगा कि किस प्रकार नैतिक सिद्धान्तों की अवहेलना करने से हम दूसरों के लिए दुःखदाई प्रमाणित होते हैं ।

जब मैं विद्यार्थी था; तब मैंने दो कहानियां पढ़ी थीं, जो मेरे हृदय पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ गईं । पहली कहानी यह थी कि एक पहाड़ी स्थान में एक पुल था जो इतना तंग और खतरनाक था कि एक समय में एक ही व्यक्ति कठिनता से उस पर से गुजर सकता था । थोड़ी सी असावधानी से वह नीचे की गहरी घाटी में गिरकर चूर-चूर हो सकता था । एक दिन गाँव वालों ने दो बकरियों को दोनों ओर से पुल पर आते देखा । दोनों ही बकरियां जवान और चुस्त थीं । जब वे पुल के मध्य में पहुंची, तो एक दूसरी को पीछे धकेलने लगीं । परिणाम यह हुआ कि दोनों ही नीचे गिरीं और तुरन्त मर गईं । अब आप बताइये कि उन्होंने क्या मूर्खता की ?

विद्यार्थी — उनकी मूर्खता यह थी कि उन्होंने एक दूसरे की सहायता करने के स्थान में एक दूसरे को धकेलना शुरू किया ।

शिक्षक— अब मैं आपको दूसरी कहानी भी सुनाता हूं, जो इस प्रसंग को अधिक स्पष्ट कर देगी । उसी पुल पर एक बार दो और बकरियां आमने-सामने से आईं । उन में से एक बकरी पुल पर लेट गई, और दूसरी को अपने ऊपर से गुजर जाने दिया । और फिर आप भी उठकर अपना रास्ता लिया । जिन गांव वालों ने उस दृश्य को देखा, वे बहुत विस्मित हुए और जब दोनों बकरियाँ कुशलपूर्वक पुल के पार हो गईं, तो उनको बहुत हर्ष हुआ । अब आप ने देखा कि दूसरी कहानी में जो बकरी लेट गई उसने उदारता का परिचय दिया । ऐसी उदारता से न केवल उसने दूसरी बकरी का गुजरना सुगम कर दिया, अपितु स्वयं भी कुशलता से पुल पार कर गई । इस प्रकार दूसरों के लिए थोड़ी-सी ही त्याग की भावना होने से उस बकरी ने अपनी और दूसरी बकरी की जान बचा ली । पहली कहानी में दोनों बकरियां उस त्याग की भावना और उदारता से खाली थीं, जिसके परिणामस्वरूप दोनों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा । अतएव यदि हम अपने लिए रक्षा और सुख चाहते हैं, तो हमें यह भी सोचना चाहिए कि दूसरे भी अपने लिए ऐसा ही चाहते हैं । जो कुछ हम दूसरों से पाना चाहते हैं, वही दूसरों को देने के लिए हमें खुशी-खुशी तैयार रहना चाहिए । ऐसी भावना हमारी लाखों कठिनाइयों का अन्त कर देगी ।

एक विद्यार्थी — हमें इस दूसरे दृष्टान्त ने बहुत प्रभावित किया है । क्या कृपा करके कुछ दृष्टान्त मनुष्यों के भी देंगे ?

शिक्षक— हाँ ! मैं आपको एक सच्ची घटना सुनाऊँगा । वह इस प्रकार है कि एक बार किसी गांव में दुभिक्ष (अकाल) पड़ गया । दुभिक्ष-पीड़ितों के दुख ने उस गांव के बड़े जमींदार के दिल को हिला दिया । उसने एक सदाव्रत खोल दिया, जिस में कि गाँव के प्रत्येक परिवार के प्रत्येक जन को एक-एक बड़ी रोटी मिलती थी । सब ग्रामीण एक निश्चित समय में वहां आते थे और उनमें से प्रत्येक ही सब से पहले रोटी लेने के लिए धक्का-मुक्की करता था । ज़मींदार को यह देख साश्चर्य होता था, कि इतनी धक्का-मुक्की होते हुए भी एक लड़की ऐसी थी, जो कभी भीड़ में नहीं घुसती थी, किन्तु एक कोने में चुपचाप खड़ी रहती थी । और जब सब लोग अपनी रोटी ले चुकते थे, तब वह अपनी रोटी लेती थी । बहुधा अन्तिम रोटी छोटी हुआ करती थी । जब जमींदार ने कई दिनों तक इस दृश्य को देखा, तो वह उस लड़की के सन्तोष और आत्म-त्याग से बहुत प्रभावित हुआ । एक दिन उसने उस लड़की को एक रोटी दी, जिसमें उसने एक अशरफ़ी रख दी । जब लड़की ने घर पहुंच कर वह रोटी अपनी मां को दी, और मां को उसमें यह अशरफ़ी मिली, तो उसने लड़की से पूछा कि क्या वह अशरफ़ी उसे जमींदार ने दी थी ? लड़की ने कहा कि मुझे जमींदार ने कोई अशरफी नहीं दी । यह गलती से आ गई होगी । मैं अभी जाकर उस दयालु जमींदार को वापिस दे आती

हूँ । लड़की जमींदार के घर गई और अशरफ़ी मेज पर रख कर बोली कि मुझे यह अशरफ़ी रोटी में मिली है । यह भूल से रोटी में चली गई होगी । इसलिए मैं इसे सन्मान पूर्वक आपको लौटाती हूं । जमीदार ने कहा, प्यारी बच्ची ! यह अशरफ़ी तुम्हारे लिए ही रोटी में रखी गई थी । मैं तुम्हारे सन्तोष और स्वार्थ-त्याग से बहुत प्रभावित हुआ हूं । आज से तुम्हें मेरे लंगर में से सबसे अच्छी रोटी मिला करेगी । यह एक ऐसे मानव हृदय का दृष्टान्त है कि जो दूसरों के सुख के हेतु अपने लाभ को छोड़ सकता था । स्वार्थ-त्याग की इस भावना से न केवल उसे सच्ची शान्ति मिली, वरन् वह दूसरों की कृपा की अधिकारी भी बनी ।

विद्यार्धी – निस्सन्देह यह एक सुन्दर दृष्टान्त है । परन्तु हम अपने जीवन में इससे कसे लाभ उठा सकते हैं ?

शिक्षक – मैंने कई बार देखा है कि जब मैं क्लास में आता हूं तो आप में से बहुत से लड़के अगली सीट लेने के लिए दौड़ते हैं । और आप में से कुछ एक दूसरे को धक्का भी दे देते हैं । यहाँ तक कि सीट खाली होते हुए भी दूसरे को बैठने नहीं देते । इससे प्रकट होता है कि आपके भीतर दूसरों के लिए उदारता नहीं है । जब आप अगली सीट के लिए दौड़ते हैं, तो आप यह भूल जाते हैं कि दूसरे भी आगे की सीट चाहते हैं । अगर आप में से प्रत्येक ही दूसरे का ध्यान रखे और अपना स्थान उसके लिए छोड़ दे तो इस प्रकार का शोर, अशान्ति और धक्का-मुक्की कुछ न होगी । क्या मैं सत्य नहीं कह रहा हूं ?

विद्यार्थी – आप ठीक कहते हैं । शोक कि बहुधा हम ऐसा ही करते हैं । आप हमें इसका घृणित रूप दिखाने की कृपा करें ।

शिक्षक – अवश्य ! मैं साधारणतः रेल के तीसरे दर्जे में सफ़र करता हूं । मैंने अपने जीवन में एक बड़ा सबक सीखा है कि जब मैंने एक सीट का किराया दिया है, तो मुझे उससे अधिक सीटों पर अधिकार नहीं करना चाहिए । इसलिए जब मुझे एक सीट मिल जाती है, तो मैं सन्तुष्ट होकर बैठ जाता हूं । दूसरों को गाड़ी में न घुसने देने का विचार भी मेरे हृदय में उत्पन्न नहीं होता । इससे मुझे सदा ही बड़ी शान्ति मिली है । जबकि मैंने देखा है कि इस छोटी-सी बात का ध्यान न रखने से लोग दूसरों के लिए बड़ी विपत्ति खड़ी कर देते हैं । ऐसा करने से मनुष्य अत्याचारी बन जाता है । एक बार मैं एक ऐसे डिब्बे में बैठा कि जिसमें तेरह या चौदह मुसाफिर बैठ सकते थे, परन्तु उसमें हम केवल पांच व्यक्ति बैठे हुए थे । एक जंकशन (स्टेशन) पर एक बड़े डील-डौल वाले पुरुष ने डिब्बे में घुसना चाहा । मेरे चारों साथी मुसाफ़िर किसी और मुसाफिर का आना पसन्द नहीं करते थे । वह रास्ता रोक कर खड़े हो गए । वह पुरुष बड़ा ताकतवर था । उसने दरवाजे को जोर से एक धक्का दिया तो वह चारों व्यक्ति धड़ाम से गिर पड़े । जब वह डिब्बे में घुस आया, तो उसने भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया । उसने उन चार मुसाफ़िरों को खूब बुरी-भली सुनाई और कहा कि क्या तुम को इतना भी ख्याल न आया, कि तुम्हारे ऐसे दुर्व्यवहार से मैं गाड़ी से ही रह गया होता । मुझे विश्वास था कि इन चारों आदमियों की संकीर्णता ने उस के भीतर ऐसे व्यवहार के प्रति घृणा पैदा कर दी होगी । परन्तु आप यह सुनकर हैरान होंगे कि जब उसके एक घन्टे बाद गाड़ी एक बड़े स्टेशन पर ठहरने को थी, तो वह स्वयं उठा और हम से कहने लगा, आपको फ़िकर करने की जरूरत नहीं, मैं देखूंगा कि इस डिब्बे में कोई कैसे चढ़ता है ? उसने अपने इन घृणित शब्दों को सच कर दिखाया और रेल के नियमों और सभ्यता के विरुद्ध उसने किसी को भी अन्दर न घुसने दिया । इस स्वार्थपरता ने उसको आन्तरिक शान्ति से वंचित कर दिया, क्योंकि प्रत्येक स्टेशन पर उसे खड़ा होकर चौकीदारी करनी पड़ती थी । अब आप स्वयं सोच सकते हैं कि यह अपनत्व की भावना मनुष्य को अपने और औरों के लिए कितना दुखदायी बना देती है । वह यह तो नहीं चाहता था कि दूसरे उसके लिए दरवाजा बन्द करदें, परन्तु वह आप दूसरों के लिए दरवाजा बन्द करने में कोई दोष नहीं देखता था । अपनत्व की इसी भावना ने तीसरे दर्जे में सफ़र करने वाले मुसाफ़िरों के लिए रेल यात्रा दूभर कर दी है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति सारे डिब्बे को अपने लिए ही चाहता है जो असम्भव सी बात है ।

विद्यार्थी – यह तो बहुत ही भयानक है ।

शिक्षक– लीजिए, अब मैं आपको आप बीती सुनाता हूं । अभी दो सप्ताह पहले मैं बस में सफर कर रहा था । बस यद्यपि भरी हुए थी, तथापि एक सीट पर जहां कि चार व्यक्ति बैठे हुए थे, एक आदमी की जगह खाली थी। वहां पांच आदमी बैठ सकते थे । बस के मालिक ने उन व्यक्तियों से मुझे एक सीट देने के लिए कहा । उनमें से दो उच्च शिक्षा प्राप्त जनों ने जो कि खूब सजधज कर बैठे हुए थे, मुझे उस बैंच पर इतनी जगह दी कि जो दस वर्ष के बालक के लिए भी थोड़ी थी । मैं वहां बड़े कष्ट से बैठ सका । यदि उन्होंने मुझे एक सीट दे दी होती जो कि वह आसानी से दे सकते थे, तो मेरी यात्रा आराम से कट जाती । परन्तु देखता क्या हूं कि न केवल उन्होंने मुझे पूरी सीट ही नहीं दी, बल्कि वह समझते थे कि मेरा एक सीट के उस चौथाई भाग पर भी कोई अधिकार न था, जो कि अपनी समझ में उन्होंने बड़ी दया करके मुझे दिया था । मैंने यही उचित समझा, कि अपनी

और दूसरों की सुविधा के हेतु मुझे नीचे फ़र्श पर बैठ जाना चाहिए और मैंने ऐसा ही किया । मेरे ऐसा करने से उनको बहुत खुशी हुई, और उन्होंने मुझ से कहा, "आपने बड़ा अच्छा किया, जो फर्श पर बैठ गए । आपके सीट पर बैठने से हम बड़ी तक़लीफ़ में थे ।"

विद्यार्थी — उन लोगों का यह व्यवहार अत्यन्त लज्जास्पद था ।

शिक्षक — यह तो हर्ष की बात है, कि आपने उन लोगों के व्यवहार को लज्जास्पद अनुभव किया है, परन्तु क्या आप अपने व्यवहार को भी, जिसका प्रदर्शन आप अपनी क्लास के कमरे में करते हैं, ऐसा ही अनुभव करते हैं ? हमें दूसरों की आँख का तो तिनका भी नज़र आ जाता है परन्तु अपनी आँख का शहतीर भी नज़र नहीं आता ।

मैं आपको एक सच्ची कहानी सुनाता हूँ, जो मुझे एक बोडिंग हाऊस का निरीक्षण करते समय वहाँ के लड़कों के विषय में सुनाई गई । जब मैंने वहाँ एक सदाचार सम्बन्धी सभा कराई तो एक लड़का उठ खड़ा हुआ और उसने निम्नलिखित आपबीती सुनाई । "दस पन्द्रह दिन पहले की बात है कि हम बोर्डिंग के लड़कों ने एक ऐसी किया की, जो इस सभा में बैठकर मुझे अत्यन्त घृणित अनुभव हुई है । बोर्डिंग के नियमानुसार हम सब एक साथ भोजन करते हैं । हमारा नौकर हमें खाना खिलाता है । हम कुल 24 लड़के हैं । एक दिन हम में से एक लड़का खाने के समय उपस्थित न था, उसकी अनुपस्थिति का न तो हमें ही ध्यान रहा और न ही नौकर को । हम खाना शुरू करने ही वाले थे कि उस लड़के को आते देखा । वह बेचारा भी हमारी तरह ही भूखा था । अब न्याय पूर्ण बात तो यह थी कि हम उस का भाग उसे दे देते, परन्तु हम स्वार्थी लड़कों ने अपने उस सहपाठी की कोई परवाह न की । हमने उसे देखते ही झट खाना शुरू कर दिया, क्योंकि आप जानते हैं कि थालीं में से थोड़ा-सा भी खा लिया जाए तो शेष भोजन जूठा हो जाने के कारण दूसरों के काम का नहीं रहता । हमारी ऐसी क्रिया से हमारे उस सहपाठी और साथी को भूखा रहना पड़ा, परन्तु हम सब खुश थे ।" वह इस घटना का वर्णन करते हुए अश्रुपात कर रहा था ।

प्रिय विद्यार्थियों ! अब आप अनुभव कर सकते हैं कि अपनत्व का भाव हमें किस रसातल तक पहुंचा देता है । आप में से कितने हैं जो अपनी क्रिया को भी इसी रूप में देखते हों ? मुझे पता लगा है कि हमारे बोर्डिंग में भी जब कोई स्वादिष्ट भोजन बनता है तो पहले आने वाले लड़के उस सारे को चट कर जाते हैं और पिछले लड़कों के लिए कुछ नहीं छोड़ते । यह लीला इसलिए होती है कि आपको वह भोजन स्वादिष्ट लगता है और रसोइए के बार-बार यह सूचित करने पर भी कि पीछे वालों के लिए भोजन नहीं बचेगा, आप तनिक परवाह नहीं करते । यदि आप यह अनुभव कर सकें कि आपका ऐसा व्यवहार आपको नीच बनाता है, तथा मित्रों, साथी विद्याथियों, पड़ोसियों, नगर वासियों और प्रियतम सम्बन्धियों के सम्बन्ध में आपको हानिकारक बनाता है, तो आपको यह निश्चय ही घृणित प्रतीत होगा और आप मेरी इस बात से सहमत हो जाएंगे कि दूसरों के प्रति उदारता की हमें बहुत बड़ी आवश्यकता है । उदारता का अभाव मनुष्य को न केवल पशु तुल्य बना देता है, अपितु उसके सामाजिक जीवन को असम्भव बना देता है । आशा है, आज इतना ही बताना यथेष्ट होगा, और अगली बार जब हम मिलेंगे तो आप विविध सम्बन्धों में अपने आचरण के सम्बन्ध में अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे, क्योंकि भलाई और उच्च चरित्र सम्बन्धों के ही अनुरूप है ।

3. माता पिता के प्रति सद्भावना

अगले दिन जब विद्यार्थी नीति शिक्षा के लिए एकत्र हुए तो एक विद्यार्थी ने खड़े होकर कहा, "पिछली बार आपने एक विशेष मानसिक धारणा "दूसरों का भी ध्यान रखो" के विषय में शिक्षा दी थी, जिससे मुझे बहुत लाभ हुआ है । क्या आप कृपा करके इस विषय को भी कि 'हमें अच्छा क्यों बनना चाहिए' जीवन के सच्चे दृष्टान्तों द्वारा अधिक स्पष्ट करेंगे ?"

शिक्षक – हाँ, अवश्य । मैं आपको एक सच्ची कहानी सुनाता हूं । एक व्यक्ति की पत्नी का देहान्त हो चुका था, उसकी चार लड़कियां थीं, जो सभी स्यानी हो चुकी थीं । उसे उनके विवाह की बड़ी चिन्ता थी । उसने एक अच्छे स्वभाव वाले और धनी नवयुवक को अपनी लड़कीयों में से एक के लिए उपयुक्त वर समझा । उसने उस नवयुवक को प्रेरित किया कि वह उसके घर आए और उसकी लड़कियों में से एक को विवाह के लिए पसन्द कर ले । एक दिन उस व्यक्ति ने थियेटर के लिए टिकट खरीदे, और इस नवयुवक को भी निमन्त्रित किया । जब यह सब लोग खेल देखने के लिए चलने ही वाले थे तो पता लगा, कि एक टिकट कम है । क्योंकि थियेटर में सब सीटें दो-तीन दिन पहले रिजर्व हो चुकी थीं, इसलिए एक लड़की का घर पर रहना आवश्यक था । अब समस्या यह थी कि थियेटर देखने का त्याग कौन कर सकता है ? तीनों बड़ी लड़कियों ने तो चुप साधे रखी, परन्तु सबसे छोटी लड़की झट बोल उठी, "पिता जी ! मैं घर पर ठहरूंगी । मेरी बहनों में से किसी को घर छोड़ा गया तो मेरे लिए खेल नीरस हो जाएगा ।" पिता के सिर से मानो बोझ उतर गया । नवयुवक ने यह सब बात ध्यान में रख ली । वह जानना चाहता था, कि लड़की के स्वार्थ-त्याग की भावना से ऐसा किया है, या दिखावे मात्र के लिए । वह खेल को बीच में ही छोड़ कर किसी बहाने से यह देखने के लिए घर आया, कि लड़की यह त्याग करके दुखी तो नहीं है । उसने देखा, कि वह प्रसन्न चित्त से प्यानो पर एक मधुर गीत गा रही है । खेल समाप्त होने पर जब सब लोग घर वापिस आ गए, तो नवयुवक लड़कियों के पिता से उसके कमरे में मिला और कहा, कि मैंने आपकी सबसे छोटी लड़की के सन्मुख अपने विवाह का प्रस्ताव रखने का निश्चय किया है । यदि आप मेरे इस प्रस्ताव को स्वीकार करलें तो मैं आपका कृतज्ञ हूंगा । पिता को यह जान कर प्रसन्नता हुई, कि नवयुवक ने उसकी एक लड़की को पसन्द कर लिया है । उसने नवयुवक से कहा, मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी, यदि आप मेरी सबसे छोटी लड़की के साथ विवाह करेंगे । परन्तु उसकी अनुमति भी आपको ले लेनी चाहिए । यद्यपि मुझे पूरी आशा है, कि वह आपके प्रस्ताव को स्वीकार करेगी, तो भी उससे पूछ लेना आवश्यक है । यह नवयुवक लड़की के पास गया और उसे बताया कि मैं आपके पिता जी की स्वीकृति से आपके साथ विवाह करने का प्रस्ताव लेकर आपके पास आया हूँ । यदि आप भी इसे स्वीकार करें, तो मैं आपका कृतज्ञ हूँगा । मैं आप से प्रेम ही नहीं करता, आपके प्रति श्रद्धा भी रखता हूँ । और मैं यह अनुभव करता हूँ कि आप ही एक ऐसी लड़की हैं, जो मेरे जीवन को सुखी बना सकती हैं ।

लड़की ने उत्तर दिया, मैं इसको अपना बड़ा सौभाग्य समझती हूँ कि आप मुझसे विवाह करना चाहते हैं, परन्तु आप जानते हैं कि मेरी माता जी का देहान्त हो चुका है, और मुझे मालूम है, कि मेरी तीनों बहिनें शादी करेंगी, और मेरे पिता जी को अकेला छोड़ जाएँगी; तब कौन उनकी देखभाल करेगा ? ऐसी अवस्था में मैं शादी करने का विचार तक नहीं कर सकती । नवयुवक यह सुनकर चकित रह गया, और कहने लगा कि मैं शादी के बाद आपके पिता के घर आकर रहने के लिए तैयार हूँ । "यह सम्भव नहीं," लड़की ने उत्तर दिया । "क्योंकि विवाह करके मैं एकाग्रचित्त होकर अपने पिता जी की सेवा नहीं कर सकूंगी । शोक है कि अपने सुख के लिए अपने पिता का त्याग नहीं कर सकती ।" नवयुवक ने लड़की के शब्दों में दृढ़ता भांप ली । वह उसके पिता के पास गया और सारा हाल कह सुनाया । पिता अपनी लड़की के स्वभाव से भली भांति परिचित था, इसलिए उसने लड़की पर जोर नहीं दिया । समय के साथ तीनों बड़ी लड़कियाँ शादी करके अपने-अपने ससुराल चली गईं । कुछ वर्ष के बाद लड़कियों के पिता का घोड़े पर से गिर जाने के कारण देहान्त हो गया । तब वह छोटी लड़की उस युवक से विवाह करने के लिए तैयार हुई । अब आप बतलाइये कि आपको इस कहानी में किस बात ने सबसे अधिक प्रभावित किया ?

विद्यार्थी – मेरे हृदय पर जिस बात ने विशेष प्रभाव डाला है, वह यह है, कि लड़की ने त्याग में प्रसन्नता अनुभव की । उसने औरों के सुख के लिये स्वयं खेल से वंचित रहने में सुख प्राप्त किया । उसने अपने विवाह के आनन्द का त्याग करके अपने पिता जी की सेवा करने में सुख अनुभव किया । त्याग में उसने कोई कठिनाई अनुभव नहीं की ।

शिक्षक – आपने खूब पते की बात कही । निस्सन्देह, जिस त्याग में प्रसन्नता न मिले, वह त्याग ही नहीं । खुशी-खुशी किया हुआ त्याग ही हमें सुखी और श्रेष्ठ बना सकता है । क्या आप बता सकते हैं कि उस लड़की ने यह त्याग किस के लिए किया ?

विद्यार्थी – पहले अपनी बहिनों के लिए और फिर अपने पिता के लिए ।

शिक्षक – क्या आप भी त्याग की भावना को श्रेष्ठ समझते हैं ? (सब विद्यार्थियों ने "जी हाँ", "जी हाँ" कह कर उत्तर दिया ।)

शिक्षक – यदि आप सब अपने भाई-बहिनों और पिता के हेतु त्याग करने में प्रसन्नता अनुभव करने लगें तो आप के घर ऐसे सुरक्षित क़िले बन जाएंगे, कि शत्रु आपको कोई हानि न पहुंचा सकेंगे । परन्तु यह एक प्रसिद्ध बात है, कि अधिकांश मानव हृदय इस त्याग की भावना से शून्य हैं ।

एक विद्यार्थी – परन्तु श्रीमान जी ! आपको यह कैसे अनुमान हुआ कि हमारे भीतर यह त्याग की भावना नहीं है ?

शिक्षक – मैं आक्षेप करना नहीं चाहता । मैं कुछ और जनों के दृष्टान्त देता हूं, उनसे ही आप अपने स्वभाव की जाँच कर सकते हैं ।

जब मैं बम्बई में पढ़ता था, तो एक लड़का मेरा क्लब का साथी था । जिस क्लब में हम रहते थे, उसका खाने और रहने का अधिक से अधिक खर्च 25 रुपए मासिक था । हम में से अधिकतर विद्यार्थी घर से 35 या 40 रुपये से अधिक नहीं मंगवाते थे । परन्तु यह नवयुवक 125 रुपये मासिक घर से मंगाता था । 2 रुपये प्रतिदिन तो उसका फलों का खर्च था । यह रकम उसकी आवश्यकता से बहुत अधिक थी । दूसरों में बड़ा कहलाने के लिए वो अपने मित्रों को सम्मिलित भोजन के लिए निमन्त्रित किया करता था । वह इस बात का भूखा था कि उसके साथी उसे राजकुमार समझें और जब कोई उसे राजकुमार कह कर बुलाता तो वह खुशी से फूला न समाता था । वह प्रशंसा का आकाँक्षी कभी यह न सोचता था, कि उसको रुपया भेजने के लिए उसके पिता को कितना कुछ कष्ट उठाना पड़ता है । क्या आपके ख्याल में इस लड़के को अपने पिता के दुख का कुछ भी अनुभव था ?

विद्यार्थी – कदापि नहीं ।

शिक्षक – पिता के प्रति किसी बेटे की ऐसी मनोवृति को अधिक स्पष्ट करने के लिए मैं एक और उदाहरण देता हूं ।

लाहौर के एक कालिज में एक विद्यार्थी था, जिसका पिता एक बड़ा व्यापारी था । वह अपने इस लड़के को 125 रुपया मासिक से भी अधिक भेजता था । लड़का अमीरों की तरह ठाट-बाट से रहना चाहता था । वह अपने मित्रों से प्रशंसा पाने का तो बड़ा इच्छुक था, परन्तु अपने पिता का उसे कोई ध्यान न था । हालात ने कुछ ऐसा पलटा खाया कि उसके पिता को व्यापार में बहुत घाटा पड़ गया । इस अवस्था में वह अपने बेटे की अनुचित माँगों को पूर्ण न कर सकता था । वह मेरे एक मित्र को लेकर उस लड़के के पास गया और अपनी परिस्थिति बतला कर लड़के से अपील की, कि वह 60 रुपए से अधिक न मंगाए । मेरे इस मित्र ने बताया कि लड़का यह सुनकर क्रोध से भर गया और यहाँ तक कहने के लिए तैयार हो गया, कि मैं एक भिखारी बाप के बेटे की न्याई कालिज में नहीं रहना चाहता । मेरे मित्र ने बतलाया, कि बाप ने अपनी पगड़ी उतार कर लड़के के पाँवों में रख दी, और रो-रो कर उससे अपील की वह अपनी मांगों को कम करदे । परन्तु लड़का पाषाण हृदय वाला था । यह एक ऐसे लड़के की कथा है, कि जो अपनी एक महा नीच कामना की तृप्ति के लिए अपने पिता को इतना दुख दे सकता था । आप इस कहानी को सुनकर क्या अनुभव करते हैं ।

विद्यार्थी – यही, कि लड़के का व्यवहार अत्यन्त ही घृणित था । वह तो बेटा कहलाने का भी अधिकारी नहीं था ।

शिक्षक – एक और लड़के का उदाहरण सुनिए, जो हमारे बोडिंग में रहता था । उसका पिता स्टेशन मास्टर था और केवल 60 रुपये मासिक वेतन पाता था । जब यह पिता इस लड़के को दाखिल कराने के लिए मेरे पास आया, तो मैंने उसे साफ़ कह दिया था, कि वह 25 रुपए मासिक से अधिक अपने बेटे को न भेजे । पिता प्रायः दो वर्ष के बाद मेरे पास आया, मैंने उसे बताया कि लड़के ने पढ़ाई में कोई उन्नति नहीं की है । तब उसने मुझे बताया कि लड़का पिछले कई महीनों से 40 रुपये मासिक मंगवाता

रहा है । मुझे बहुत आश्चर्य हुआ, और मैंने उससे कहा, “बाबू साहिब ! क्या मैंने आपसे यह स्पष्ट नहीं बता दिया था, कि अपने लड़के को 25 रुपए मासिक से अधिक न भेजें । तब भी आप मुझ से बिना पूछे 40 रुपये क्यों भेजते रहे ?" उसने कहा, कि लड़के ने मुझे लिखा था कि वह संस्कृत में कमज़ोर है और उसने एक ट्यूटर रख लिया है । मैंने उसे बताया कि लड़के ने उसे धोखा दिया है । मैंने लड़के को उसके पिता के सामने बुलाया और उसे स्वीकार करना पड़ा, कि उसने कोई ट्यूटर नहीं रखा । इस पर वह वृद्ध पिता सचमुच रो पड़ा । और अपनी जोड़ लगी हुई पतलून दिखाते हुए कहने लगा "मैं स्वयं इस दशा में रहकर इसे रुपये भेजता रहा हूं । और यदि आप इसकी माँ को देखें तो वह मुझ से भी अधिक बुरी दशा में रहती है । हम दोनों साधारण आवश्यकताओं से भी अपने आपको वंचित रखते रहे हैं, सुख से रहने का तो प्रश्न ही नहीं उठता । और यह सब इसी आशा को लेकर कि एक दिन हमारा यह पुत्र पढ़-लिख कर भली भांति कमाने-खाने के योग्य हो जाएगा ।" मेरे दुःख की सीमा न रही, जब मैंने लड़के को लज्जित होने या पछताने की बजाए घमण्ड से अकड़े हुए देखा । उसके महाभयानक स्वार्थ भाव ने उसके हृदय पर इतना अधिकार कर लिया था कि उसमें अपने पिता के दुःख के लिए भी कोई सहानुभूति न रह गई थी । पिता को लाचार हो लड़के की पढ़ाई बन्द करनी पड़ी । आप ऐसे लड़के के विषय में क्या कहेंगे ?

विद्यार्थी – उसकी प्रवृति अत्यन्त घृणित थी ?

शिक्षक – जहाँ स्वार्थ लाखों बेटों के हृदय को नीच और उन्हें अपने परिवार के लिए अभिशाप बना देता है, वहाँ स्वार्थ का त्याग अत्यन्त और सुखकर दृश्य पैदा करता है । मैं इसी सम्बन्ध में एक या दो उदाहरण और देता हूं ।

एक दिन मैं विद्यार्थियों को सदाचार सम्बन्धी शिक्षा दे रहा था, कि एक भद्र जन मुझ से मिलने के लिए आया । जब मैं बाहर गया, तो उसने मेरा हाथ अपने दोनों हाथों में ले लिया और अश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ कहा, "मेरे लड़के के जीवन में जो शुभ परिवर्तन आ गया है, मैं उसके लिए आपको धन्यवाद देने आया हूं । लड़के की सौतेली मां होने के कारण मेरे लिए लड़के को प्रसन्न रखना एक कठिन समस्या थी । जिसे सुलझाने में मैं पूर्णतः असमर्थ था । आपकी संस्था ने उसे बड़ी सुन्दरता से सुलझा दिया है । अब वह मेरा और अपनी माता का बहुत ध्यान रखता है । वह हमारी नाना प्रकार की सेवा करने के लिए तत्पर रहता है । जिससे हमें बहुत हर्ष होता है । हमारा घर जो पहले नरक बना हुआ था, अब स्वर्ग बन गया है । वह मेरे पाँव दबाए बिना और मेरे सो जाने से पहले कभी नहीं सोता । इसी प्रकार वह अपनी माता की भी घर के कामों में बहुत सहायता करता रहता है । क्या मैं जान सकता हूं कि उसमें ऐसा परिवर्तन कैसे आ गया, ताकि मैं घर पर भी इस विषय में उसकी सहायता कर सकूँ ।" आप देख सकते हैं कि अपने माता पिता के प्रति कुछ सद्भावना होने से यह लड़का पारिवारिक जनों के हृदय में कितना स्थान पा गया ।

इससे भी अधिक विचित्र एक और घटना है। एक बार जब मैं एक रेलवे स्टेशन पर खड़ा हुआ था, तो एक भद्र जन ने आकर बहुत नम्रता से मुझे प्रणाम किया । मैंने उसका परिचय पाना चाहा तो उसने कहा, "यद्यपि आप मुझे नहीं जानते, परन्तु मैं आपको जानता हूं, और आपका कृतज्ञ भी हूं । मेरा लड़का कालिज का विद्यार्थी है, आपके कालिज में आने से पहले उसको प्रसन्न रखना हमारे लिए बहुत कठिन था । मामूली आमदनी होने के कारण मैं उसकी मांगों को पूरा न कर सकता था । जब कभी मैं अपनी असमर्थता प्रकट करता था, तो वह मुंह बना लेता था । और रूठ कर चला जाता था । परन्तु अब उसका सारा व्यवहार बदल गया है । यहाँ तक कि उसने मुझ से जेब खर्च लेना भी छोड़ दिया है । थोड़े ही दिन पहले जब मैंने उससे कहा, कि सरदी का मौसम निकट आ रहा है, सभी परिवारिक जन नये वस्त्र बनवाएंगे तुम भी अपना नया सूट बनवा लो, तो उसने यह कह कर इन्कार कर दिया, कि उसके पास पहले ही काफी सूट हैं और वह मुझ पर अनावश्यक बोझा डालना नहीं चाहता । उसकी माँ ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से उससे कहा कि वह ऐसी साधारण वस्तुएँ बनवाने से इन्कार न करे । परन्तु उसने उत्तर दिया, "माता जी ! मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूँ कि जब मैं कम से कम आपकी आर्थिक सेवाओं का ही धन के द्वारा सौ गुणा बदला दे सकूंगा, आप के स्नेह का बदला देना तो मेरे लिए असम्भव है ।" अन्तिम वाक्य कहते हुए उस भद्र जन का गला रुक गया । मुझे इस बात की बड़ी प्रसन्नता थी कि माता-पिता के प्रति सद्भावना की एक सुन्दर घटना सुनने को मिली । मुझे यह बताते हुए हर्ष होता है, कि उस लड़के ने अपने कथन को पूरा किया । वह अब डबल एम. ए. और प्रोफेसर है और एक सपूत बेटा प्रमाणित हो रहा है । पुत्र के हृदय में पिता के प्रति ऐसे ही सुन्दर भाव वर्तमान होने चाहिए । प्रत्येक पुत्र को यह अनुभव करना चाहिए, कि वह अपने पिता से जो भी उपकार पाता है, वह उसके ऊपर एक ऋण है जो उसे कृतज्ञता और प्रेम से चुकाना चाहिए । उपरोक्त उदाहरण को सन्मुख रखते हुए क्या आप मुझे बता सकते हैं, कि आप में से कितनों के हृदय में अपने माता-

पिता के प्रति ऐसी श्रेष्ठ भावना वर्तमान है ?

विद्यार्थी – हम आपके बड़े कृतज्ञ हैं कि आप ने इस विषय को बहुत स्पष्ट कर दिया है और हमारे हृदय के अन्धकार को बहुत कुछ दूर किया है । अब हम यह अनुभव करते हैं, कि अच्छे लड़के बनना अभी बहुत दूर की बात है, तो भी हम यत्न अवश्य करेंगे ।

शिक्षक – मैं आपको फिर बताना चाहता हूँ, यदि आप अपने माता-पिता के सम्बन्ध में ऐसी सद्भावना धारण करें तो आपको अपने गरीब माता-पिता पर भी गर्व होगा । और आप माता-पिता के ऐसे पेशे का अनुकरण करने में भी अपना गौरव समझेंगे, कि जिसको तुच्छ कहा जाता है । मैं आप लोगों के सम्मुख दो लड़कों का दृष्टान्त रखता हूं, एक बुरे लड़के का तथा दूसरा कृतज्ञ लड़के का ।

एक बोर्डिंग में एक ऐसा विद्यार्थी रहता था, जिसका पिता बहुत धनाढ्य था, परन्तु था सीधा-सादा ग्रामीण । वह अपने ग्रामीण वेष में अपने लड़के से मिलने आया । लड़के ने जब पिता को सीधे-सादे कपड़ों में आते देखा, तो उसके दिल पर एक आघात-सा लगा, और झुंझला कर पिता से कहने लगा, कि जब लड़कों को यह पता लगेगा, कि एक भद्दे कपड़े पहनने वाला व्यक्ति मेरा पिता है तो वह मुझे क्या कहेंगे । दिन भर उस लड़के ने पिता को अपने कमरे से बाहर न जाने दिया, और जब स्वयं बाहर जाने लगा तो पिता को कमरे में बन्द करके बाहर से ताला लगा दिया । मानो अपने वृद्ध पिता को पिंजरे में बन्द कर दिया हो । रात को उसने पिता को चुपचाप बाहर निकाला और स्टेशन पर पहुँचा दिया । यह एक कृतघ्न बेटे की कथा है, जो अपने पिता के सम्बन्ध में सद्भावना से शून्य था । अब इसी कालिज के एक विद्यार्थी की कथा सुनिए, जो एक छोटे से जिमींदार का लड़का था । उसके जीवन में इतना शुभ परिवर्तन आ गया था, कि अपने घर जाने पर उसने पिता से आराम करने की प्रार्थना की और स्वयं पिता के सारे काम–खेत में हल चलाने से लेकर भैंस का दूध दोहने तक–करने आरम्भ किए । जब वह तीन महीने की छुट्टियां समाप्त होने पर कालिज में वापिस आया तो उसने बताया, "जब मैं घर गया तो पहले मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मानों सारी दुनियाँ मेरी तरफ ताक रही है और कह रही है कि इस कालिज में पढ़ने वाले मूर्ख को देखो जो ऐसे तुच्छ कामों में लगा हुआ है, परन्तु मेरे भोतर अपने पिता के प्रति जो प्रेम और सद्भावना विकसित हो चुकी थी, उसने मुझे इस योग्य बना दिया कि मैं न केवल अपने पिता पर गर्व करूँ, अपितु उनके व्यवसाय पर भी गर्व करूं । अतएव न केवल मैं अपने पिता का सारा काम करता था, प्रत्युत उस काम में मुझे एक ऐसा स्वर्गीय रस भी मिलता था, जो मेरे लिए एक नवीन अनुभव था ।" इस नवयुवक लड़के के दृष्टान्त से आप यह देख सकते हैं कि पिता के प्रति सच्चे प्रेम और सद्भावना ने न केवल लड़के को अपने पिता पर गर्व करने के योग्य बना दिया, बल्कि पिता की सामाजिक अवस्था तुच्छ होने पर भी उनकी सेवा में आनन्द अनुभव करने के योग्य बना दिया ।

4. भाई-बहनों के प्रति सद्भावना

अगले दिन क्लास फिर इकट्ठी हुई । कुछ विद्यार्थी गम्भीर तथा विचार मग्न जान पड़ते थे । ऐसा प्रतीत होता था, कि पिछली बातचीत से वह काफी प्रभावित हुए थे । उनमें से एक ने वार्तालाप आरम्भ करते हुए कहा, "कृपा करके भाई-बहिनों के सम्बन्ध के विषय में भी उसी ढंग से हमें कुछ बताइये कि जिस ढंग से आप माता-पिता के सम्बन्ध के विषय में बताते रहे हैं ।"

शिक्षक – प्रिय विद्यार्थीगण ! भाई-बहिनों के प्रति उच्च भावों के न होने से संसार में महा भयानक दृश्य पैदा होते रहे हैं । मैं उदाहरण देकर आप को बतलाऊँगा, कि स्वार्थ का भाव निकटतम सम्बन्धों को भी कितना कड़वा बना देता है ।

हमारे शहर में दो भाई रहते थे । जो धनाढ्य बाप के बेटे थे । उनमें से एक म्यूनिसिपल कमिश्नर था । दोनों भाइयों को बहुत बड़ी पैतृक सम्पत्ति मिली जिसे इन्होंने आपस में बाँटना था । इस सम्पत्ति का बटवारा बड़ा सुगम था, यदि उन दोनों में एक-दूसरे के प्रति कुछ सद्भावना होती, परन्तु क्योंकि ऐसी सद्भावना से उनके हृदय शून्य थे, इसलिए बटवारा उनके लिए एक अत्यन्न कठिन समस्या बन गई । यहाँ तक कि उनको अदालत की शरण लेनी पड़ी । 20 साल से भी अधिक काल तक मुकद्दमा चलता रहा, जिससे उनके धन की महा हानि के अतिरिक्त उनका परस्पर का सम्बन्ध भी बहुत कड़वा होता चला गया । इस मुकद्दमे बाजी का अन्त तभी हुआ, जब 22 या 23 वर्ष के बाद उनमें से एक भाई मर गया । परिणाम यह हुआ कि एक भाई ने तो सब कुछ गंवा दिया और दूसरे भाई के पास केवल एक मकान रह गया । इस प्रकार वह भाई जो एक-दूसरे के लिए बहुत सहारा समझे जाते हैं, एक-दूसरे के विनाश का कारण बन गए । यदि उनमें से किसी एक में उदारता या त्याग की भावना होती, तो हमारे शहर में यह दुखान्त नाटक कदाचित देखने में न आता ।

इसी प्रकार एक और शहर की घटना है । वहाँ भी दो भाइयों ने एक बड़ी जायदाद बाँटी थी । उनमें से एक भाई अपने पीछे इकलौता बेटा छोड़ कर मर गया । दूसरे भाई के छः बेटे थे । अब इस भाई ने जो छः बेटों का पिता था, अपने हृदय में राक्षसी विचार पोषण करने आरम्भ किए । उसने सोचना शुरू किया, "हाय ! जब मैं मर जाऊँगा, तो मेरी जायदाद छः बच्चों में बंट जाएगी, और उनमें से प्रत्येक को बहुत थोड़ी-थोड़ी सम्पत्ति मिलेगी, जब कि मेरे भाई के लड़के को अकेले ही इन सबके बराबर सम्पत्ति मिल जाएगी । मैं इसको सहन नहीं कर सकता ।" इस पिशाच मनोवृत्ति से परिचालित होकर उसने एक भयंकर षड्यन्त्र रचा । उसने अपने लड़कों को प्रेरणा दी कि वह उसके भाई के इकलौते लड़के का काम तमाम कर दें । उसने लड़कों से यहाँ तक कहा, कि यदि उनमें से एक को फांसी भी हो जाए तो कोई बात नहीं क्योंकि शेष भाइयों को तो उसकी सारी जायदाद मिल जाएगी, और वह छोटे जमींदार कहलाने के कलंक से तो बच जाएँगे । इस नारकीय भावना को उसने पूरा कर दिखाया और अपने मृत भाई के इकलौते बेटे की हत्या करवा के उसकी विधवा माँ को सदा के लिए दुख की आग में डाल दिया । ओह ! स्वार्थ या अपनत्व का भाव मनुष्य को अपने प्रिय भाइयों और भतीजों का भी हत्यारा बना देता है ।

कई वर्ष हुए मैं तथा देव समाज के एक अन्य कर्मचारी एक धनाढ्य व्यक्ति के घर गए । घर में दो बच्चे एक ही चारपाई पर एक-दूसरे से लिपट कर सोए हुए थे । मेरे साथी कर्मचारी ने बच्चों की ओर संकेत करते हुए कहा, "आप देख रहे हैं, ये दोनों बच्चे एक-दूसरे के प्रति कैसे घनिष्ट प्रेम का प्रदर्शन कर रहे हैं । परन्तु मैं संसार की मनोवृत्ति जानता हूँ और इन दोनों बच्चों को भी । समय आएगा कि स्वार्थ की भावना इनके भ्रातृ-भाव को नष्ट कर देगी ।" तीस वर्ष बाद वह भाई एक-दूसरे का मुंह भी न देखना चाहते थे । उन भाइयों ने अपने जीवन का आरम्भ मानों आदर्श प्रेम से शुरू किया और अन्त इतनी घृणा के साथ कि जो भाई मर गया (उनमें से एक भाई मर गया है) उसकी मृत्यु के समय भी दूसरा भाई उपस्थित न था ।

एक विद्यार्थी – क्या आपके ख्याल में हमारे जीवन में यही लीला होगी ? आज के दिन हम यही अनुभव करते हैं कि भाई-भहनों के बिना हमारा जीवन असम्भव हो जाएगा ।

शिक्षक – आपको यह जानने की आवश्यकता है कि हमारा जीवन–शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक–अटल नियमों के अधीन है । इन नियमों को कोई एक बार पूरा करे सही, इनके परिणाम से बच नहीं सकता । अतः वे लोग जो दूसरों का ध्यान न रख कर अपने अन्दर अपनत्व का ही प्यार बढ़ाते जाते हैं, उनके लिए न केवल अन्धा अपितु निर्दयी बनना भी आवश्यक है । वे अपने स्वार्थ के लिए अपने प्रियतम सम्बन्धियों को भी हानि पहुंचाने में कोई आगा-पीछा नही देखते ।

विद्यार्थी – एक क्या अपनत्व का प्यार एकदम ही पैदा हो जाता है ?

शिक्षक – प्रत्येक भाव हमारी चिन्ताओं और क्रियायों से बढ़ता है । जब कभी भी हम अपने स्वार्थ के लिए दूसरों के अधिकारों का अपहरण करते हैं, तो हमारा अपनत्व का भाव बढ़ जाता है और ज्यों-ज्यों ऐसी गतियाँ होती हैं, त्यों-त्यों यह भाव अधिक बलवान होता जाता है । यह नीच भाव धीरे-धीरे नीच अनुराग और नीच घृणा का रूप धारण कर लेते हैं और फिर यह हमारे मोठे सम्बन्धों में विष फैलाते हैं ।

विद्यार्थी – क्या आप इसे अधिक स्पष्ट करने की कृपा करेंगे ?

शिक्षक – अवश्य ! एक परिवार में दो भाई थे । एक सदा अपने पित्ता की सेवा करने में हर्ष लाभ करता था, परन्तु दूसरा उदासीनता प्रकट करता था । पिता ने, जो चतुर व्यक्ति था, दोनों के भावों को ताड़ लिया । वह जानता था कि उसके दोनों बेटों के जीवन भिन्न-भिन्न रूप धारण करते जा रहे हैं । उस पर यह स्पष्ट हो गया कि जहाँ पहला लड़का उसके लिए सेवाकारी और कर्त्तव्यपरायण पुत्र प्रमाणित होगा, वहाँ दूसरा लड़का बहुत दुखदायी और कृतघ्न बनेगा । उसने दोनों को अच्छी संगत में रखने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु तो भी जहाँ पहला लड़का श्रेष्ठ बनता चला गया, वहाँ दूसरा उससे उल्टा रूप ग्रहण करता चला गया । मुझे पता है कि जब एक बार पिता बीमार हुए तो पहले अर्थात् अच्छे लड़के ने उसकी मातृवत् सेवा की और उसके अन्तिम दिनों को सुखमय बनाया, जबकि दूसरे बेटे ने उसे अन्तिम समय में भी दुःख पहुँचाया । इस भले लड़के ने, जिसने पिता के लिए अपने स्वार्थ का त्याग करना सीखा था, पिता के देहान्त के बाद भी अपने परिवार की उन्नति और भलाई के लिए अपनी इच्छाओं को भुला दिया । उसने अपने छोटे भाई-बहनों की पितृवत् सेवा की ।

विद्यार्थी – हम यह कैसे जानें कि हम अपने स्वार्थ के लिए अपने भाई-बहनों के अधिकारों का अपहरण कर रहे हैं या उसके लिए अपने स्वार्थ का त्याग कर रहे हैं ?

शिक्षक – मैं इसे समझाने के लिए कुछ उदाहरण देता हूँ । एक निर्धन आदमी अपने पीछे एक बड़ा परिवार छोड़कर मर गया । उसकी मृत्यु के बाद उसके एक पुत्र ने विचित्र प्रकार का व्यवहार प्रदर्शन करना आरम्भ किया । वह तब तक भोजन न करता था, जब तक उसके छोटे भाई-बहिन न कर लेते थे । उसकी दादी ने भी इसके इस व्यवहार को अनुभव किया । उसने देखा, कि यद्यपि उसका यह पोता केवल तेरह या चौदह वर्ष का था, तो भी वह सबसे पीछे खाना खाता था । एक दिन दादी ने इस लड़के को जो हाई स्कूल में पढ़ता था, कोट के लिए कपड़ा खरीद कर दिया । छोटे भाई-बहिन अभी प्राइमरी स्कूल में पढ़ते थे । इस लड़के ने उस कपड़े से अपना कोट बनवाने की बजाए अपने दो छोटे भाइयों के कोट बनवा दिए। जब दादी को इस बात का पता लगा, तो उसने इस स्वार्थ-त्यागी लड़के को छाती से लगा लिया और हर्षपूर्वक कहा, "जब तक तुम जीवित हो हमारे परिवार को दुख न देखना पड़ेगा ।" दादी का स्नेह अपने इस पोते के प्रति बढ़ता चला गया । इस लड़के का आगामी जीवन परिवार के लिए एक वरदान प्रमाणित हुआ, क्योंकि उसने परिवार को दरिद्र अवस्था से निकाल कर शक्तिशाली और धनवान बना दिया ।

एक और ऐसे लड़के की भी ऐसी ही कहानी है, जिसमें ऐसी ही असाधारण भावना मैंने देखी । इस लड़के को स्कूल जाते समय कुछ जेब खर्च मिला करता था । उस समय उसकी आयु मुश्किल से छः या सात साल की होगी । एक दिन जब वह एक दुकान से अपने लिए कुछ वस्तु खरीदने को था, उसने एक गरीब लड़के को देखा, जो फटी-पुरानी पोशाक पहने हुए था और दुकानदार की चीजों की तरफ ललचाई आँखों से देख रहा था । इस लड़के ने चुपचाप अपना सारा जेब खर्च दुकानदार को दे दिया और कहा, "यह गरीब लड़का जो वस्तु चाहे वह इसे दे दो ।" यह भाव उसमें यहाँ तक बढ़ गया, कि यदि किसी त्यौहार पर उसे कुछ रुपए खर्च करने के लिए मिलते, तो वह अपने छोटे भाइयों को गोद में उठा कर ले जाता और उनको खिलौने और मिठाइयाँ

दिलवा देता और अपने लिए कुछ न खरीदता । पन्द्रह वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते इस लड़के की स्वार्थ-त्याग की भावना इतनी बलिष्ट हो गई कि सारा परिवार उस पर विश्वास करने लग गया । वह सचमुच ही परिवार के लिए एक शक्ति-स्तम्भ और वरदान बन गया ।

विद्यार्थी — क्या हम इस सुन्दर भाव को इस आयु में भी जब कि हम कालिज में पढ़ रहे हैं, विकसित कर सकते हैं ?

शिक्षक — जीवन का सुधार देरी से भी हो, तो भी अच्छा है । प्रत्येक अच्छा भाव एक कमाई है । यह संग्राम से प्राप्त करने की वस्तु है । आरम्भिक अवस्था में अभ्यास का साथ देना निःसन्देह कठिन हो सकता है, परन्तु यदि हम अपनी चिन्ताओं और क्रियाओं से उसका दृढ़तापूर्वक साथ देते चले जाएँ, तो ऐसा समय अवश्य या सकता है कि जब दूसरों का भला करना और अपने स्वार्थ का त्याग करना हमारे लिए एक स्वाभाविक बात हो जाए ।

विद्यार्थी — क्या आप उपरोक्त कथन को अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण देने की कृपा करेंगे ?

शिक्षक — अवश्य !

दो भाई थे, जो कई प्रकार के व्यसनों में फँसे हुए थे । वह समय दूर नहीं था, जबकि वे एक दूसरे के शत्रु प्रमाणित होते, तभी सौभाग्यवश उन्हें हमारे समाज के सम्पर्क में आने का शुभ अवसर मिला । अब उन्होंने न केवल अपने दुर्व्यसनों का ही त्याग कर दिया अपितु एक-दूसरे के प्रति सद्भावना भी रखने लगे । समय आया कि जब उन्हें अपनी जायदाद का बटवारा करना पड़ा । एक साधारण पोस्ट कार्ड द्वारा ही—जो बड़े भाई ने छोटे को लिखा—जायदाद बाँट ली गई । एक मकान बच गया जो बाँटा न जा सकता था । बड़े ने छोटे भाई से प्रार्थना की, वह इस मकान को ले ले । छोटे भाई पर बड़े भाई के स्वार्थ-त्याग का बहुत गहरा असर हुआ और उसने अपने भाई से विनयपूर्वक कहा कि वह ही इस मकान को ले ले । एक दूसरे के प्रति स्वार्थ-त्याग की सुन्दर भावना का ही यह फल है कि जायदाद के बटवारे जैसा कठिन कार्य जो लाखों परिवारों के परस्पर अनमेल का कारण बन जाता है, इतना सुगम हो गया ।

मैं आपको एक और कहानी सुनाता हूँ । बड़े भाई ने स्वयं यह आप-बीती मुझे सुनाई । वह तीन भाई हैं, और तीनों में ही एक-दूसरे के प्रति स्वार्थ-त्याग की भावना प्रबल रूप में वर्तमान है । एक बार एक भाई को दो हज़ार रुपए की रकम के विषय में ही यह पता न लग सका की यह किसकी है । उसने बड़े भाई से अनुरोध किया कि वह इस रकम को ले ले । परन्तु बड़े भाई ने उसे छूना तक स्वीकार न किया । और कहा—"क्योंकि इस रुपये का कोई हिसाब नहीं है, इसलिए तुम इसके मालिक हो, मैं इसे नहीं ले सकता ।"

उपरोक्त दोनों उदाहरण बताते हैं कि जब दूसरों के प्रति त्याग की भावना विकसित हो जाती है तो अपनत्व का नाश हो जाता है । यह अपनत्व का भाव ही है, जो त्याग को असम्भव या अत्यन्त कठिन बना देता है । दूसरों के प्रति त्याग बहुत-सी कठिनाइयों को क्षण भर में दूर कर देता है ।

एक विद्यार्थी — यह तो बताइए, यदि भाई-बहिन सब स्वार्थी बन भी जाएँ, तो परिवार की इसमें क्या हानि है ? अधिक से अधिक यही तो होगा कि वे एक-दूसरे का ध्यान न रखेंगे, परन्तु सारे परिवार को इससे क्या घाटा होगा ?

शिक्षक — जिस लड़के में अपने परिवार के हेतु स्वार्थ-त्याग करने की भावना होगी, वह परिवार के संगठन में एक महान् सूत्र बन जाएगा । जब कि एक स्वार्थी लड़का परिवार के संगठन को नष्ट करने वाला प्रमाणित होगा । मैं इस विषय को उदाहरण द्वारा स्पष्ट करता हूँ ।

एक स्त्री ऐसे समय में विधवा हो गई जबकि उसका बड़ा लड़का अभी 12 वर्ष का भी नहीं हुआ था। उसके छः बच्चे थे । यह उसका सौभाग्य था कि उसके दूसरे लड़के को 16-17 वर्ष की आयु में ही, जबकि उसने मैट्रिक पास किया था, सरकारी नौकरी मिल गई । उसका छोटा भाई जो उससे तीन या चार वर्ष छोटा था, बहुत होनहार मालूम होता था । यह दूसरा नेक लड़का अपनी माँ से कहा करता था, "प्रिय माता जी ! यह आपका तीसरा बेटा सबसे अधिक होनहार है, मुझे आशीर्वाद दें कि मैं इसे कालिज में पढ़ा सकूं । उन दिनों में कालिज में शिक्षा कोई-कोई ही पाता था । इस दूसरे बेटे ने दफ्तर में रात-दिन परिश्रम से

काम किया और चार-पाँच वर्षों में ही उसके अफसरों ने उसके काम से प्रसन्न होकर उसको एक बड़ी तरक्की दे दी । जब तक उसके छोटे भाई ने मैट्रिक पास किया, तब तक वह इस योग्य हो गया कि उसे कालिज में भेज सके । वह अपने छोटे भाई की पढ़ाई पर खुशी-खुशी धन खर्च करता रहा । यहाँ तक कि वह बी०ए०, एल-एल० बी० पास करके E.A.C. बन गया । अब इस दूसरे भाई ने अपनी शक्तियाँ चौथे भाई के लिए खर्च करनी शुरू की और उसे डाक्टरी की शिक्षा दिलवाई । यह भाई एक प्रतिष्ठित डाक्टर बना । दो भाइयों की सेवा कर चुकने पर अब उसने छोटे भाई से प्रार्थना की कि वह कलकत्ता जाकर होमियोपैथी की परीक्षा पास करे । अपनी छोटी बहन की उसने एक अच्छे परिवार में शादी कर दी । इस प्रकार एक अच्छा लड़का अपने परिवार के उत्थान का हेतु बना, जब कि मैं अनेक ऐसे परिवारों को भी जानता हूँ, जिनका इसलिए नाश हो गया, कि बड़े भाई ने अपना ही स्वार्थ पूरा किया और दूसरे भाई-बहनों की कुछ परवाह न की । स्वार्थत्याग की भावना एक संगठनकारी सूत्र है । जैसे हमारी जीवनी शक्ति हमारे शरीर को जीवित रखती है, वैसे ही दूसरों के लिए अपने स्वार्थ का त्याग परिवारों और संस्थानों आदि को जीवित रखता और दृढ़ बनाता है ।

विद्यार्थी – त्याग की जिस भावना का आपने उदाहरण दिया है, वह निःसन्देह दूसरों को बचा सकती है, परन्तु त्याग करने वाले व्यक्ति का अंत भी तो कर सकती है ।

शिक्षक – आपका प्रश्न विचार किए जाने के योग्य है । आप जरा अपव्ययिता और पर-सेवा भाव के अन्तर को समझने का प्रयत्न करें । एक अपव्यय से अपने जीवन को नष्ट कर लेता है, परन्तु एक आत्म-त्यागी मनुष्य, जिसे दूसरों की सेवा में हो रस मिलता हो, अपने लिए अपव्यय नहीं करेगा । जिसके अन्दर परिवार का निर्वाह करने की शक्ति आ जाती है, वह अपना निर्वाह भी कर सकता है । हाँ, जितना अधिक वह दूसरों का भार ग्रहण करने के योग्य होता जाता है, उतना अधिक वह अपना निर्वाह करने में सफल होता जाएगा । मैंने हमेशा यह पाया है कि ऐसा लड़का कभी दूसरों से पीछे नहीं रहता । यह ठीक है कि वह अपने धन का त्याग करता है, जो कि वह स्वयं रख सकता था; परन्तु इससे उसकी कमाने और अपना निर्वाह करने की योग्यता कम नहीं हो जाती । फिर वह जितना धन इस रूप में खर्च करता है, उससे सौ गुना कृतज्ञता और सेवा के रूप में वह प्राप्त कर लेता है, और फिर ऐसे व्यक्ति का मूल्य भी क्या हुआ, जो संसार के सब पदार्थ रख कर भी उच्च या श्रेष्ठ जीवन से खाली हो । <u>बिना उच्च जीवन के मनुष्य एक चलती-फिरती लाश है । आध्यात्मिक विचार से वह मुर्दा है ।</u> एक आत्म-त्यागी मनुष्य ही उच्च जीवन का अधिकारी बन सकता है ।

5. सम्मान और श्रद्धा की आवश्यकता

अगले दिन जब क्लास इकट्ठी हुई, तो शिक्षक ने कहा, "मैं आप लोगों को कुछ ऐसे उच्च भावों के विषय में कुछ बताना चाहता हूँ, जिनका होना विश्वगत सम्बन्धों को ठीक रखने के लिए आवश्यक है । इन भावों में से एक श्रद्धा या सम्मान का भाव है । यही भाव है, जो हमें दूसरों की अवस्था, उनके पद, उनके अनुभव और उनकी आन्तरिक सुन्दरताओं के प्रति झुकने के योग्य बनाता है । जिस प्रकार बाह्य सुन्दरता और आकारों को देखने के लिए बाह्य आँखों का होना आवश्यक है, उसी प्रकार दूसरों की आन्तरिक श्रेष्ठता और सुन्दरता के दर्शन करने के लिए सच्चे सम्मान और श्रद्धा की आवश्यकता है ।

एक विद्यार्थी – इस विषय को उदाहरण देकर समझाने की कृपा करें ।

शिक्षक – सिक्ख इतिहास में यह बताया गया है, कि सिक्खों के पाँचवें गुरु अपने ही पिता के श्रद्धावान् शिष्य थे । इनके एक बड़े भाई भी थे । जहाँ बड़े भाई अपने पिता के सम्बन्ध में केवल रस्मी सम्मान दिखाते थे, वहाँ ये छोटे भाई अपने श्रद्धा भाव के कारण अपने पिता के जीवन की श्रेष्ठता और सुन्दरता को हृदय से अनुभव करते थे । वे इतने दीन थे कि पिता के जीवन की सुन्दरता का दर्शन कर सके और उन्हें गुरु रूप में देख सके । यद्यपि दोनों नवयुवक उसी पिता के पुत्र थे, परन्तु एक में श्रद्धा भाव की वर्तमानता और दूसरे में इसका अभाव होने के कारण पिता के प्रति दोनों के दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न थे । जिस पुत्र के अन्दर श्रद्धा का भाव था, उनका नाम सिक्ख इतिहास में अमर है । इसी प्रकार महात्मा बुद्ध के जीवन के इतिहास से पता लगता है, कि उनके अपने ही एक चचेरे भाई आनन्द उनके एक अत्यन्त श्रद्धालु शिष्य बने । उनकी श्रद्धा ने उन्हें महात्मा बुद्ध के जीवन की सुन्दरता दिखाई और इसलिए यद्यपि महात्मा बुद्ध उनके भाई थे, तो भी आनन्द ने उन्हें गुरु रूप में ग्रहण किया । महात्मा बुद्ध के और भी कई सम्बन्धी उनके जीवनकाल में वर्तमान थे, परन्तु श्रद्धाविहीन होने के कारण न तो वे बुद्ध के जीवन की सुन्दरता को देख सके और न ही उनके जीवन से कुछ लाभ उठा सके । कई तो उनके सम्बन्ध में विरोधी भाव रखते थे ।

श्रद्धा का भाव ही है, जो किसी व्यक्ति को अपने पिता व अन्य सम्बन्धी के जीवन की सुन्दरता को न केवल देखने और उस पर गर्व करने के योग्य बनाता है, बल्कि उस सुन्दरता को अपने जीवन में लाने की योग्यता भी प्रदान करता है ।

विद्यार्थी – श्रद्धा के द्वारा किसी के जीवन के सुन्दर गुणों को कोई कैसे प्राप्त कर सकता है ?

शिक्षक – जिस व्यक्ति के अन्दर श्रद्धा का भाव विद्यमान होता है, वह अपने श्रद्धाभाजन की केवल आन्तरिक सुन्दरताओं को ही नहीं देखता, बल्कि उसको अपनी अपेक्षा महान् और अपने को उसकी अपेक्षा हीन और तुच्छ अनुभव करता है । इस प्रकार वह दीन व नम्र बन जाता है । यह नम्रता उसके हृदय को ऐसी अधिकारी अवस्था में पहुँचा देती है, जिससे कि वह श्रद्धाभाजन की विशेषताओं को स्वयं भी प्राप्त करता जाता है । उसकी श्रद्धा उसे श्रद्धाभाजन की महिमा के गीत गाने, उसका अनुकरण करने और उसके सद्गुणों को स्वयं ग्रहण करने के योग्य बना देती है ।

विद्यार्थी – क्या आप कृपा करके इस विषय में कुछ दृष्टान्त दे सकेंगे ?

शिक्षक – जी हाँ ! अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में डाक्टर जानसन तथा उनके विख्यात शिष्य बौसवैल की कथा आती है । जेम्ज़ बौसवैल एक बैरिस्टर थे । वे डाक्टर जानसन की, जो अपने समय के चोटी के साहित्यकार थे, साहित्यिक प्रतिभा से इतने प्रभावित हुए कि उनका हृदय सदा के लिए डाक्टर जानसन के प्रति आकृष्ट हो गया था । बौसवैल सदैव जानसन के निकट रहने के लिए अवसर ढूँढ़ा करते थे । उन्होंने डाक्टर जानसन के जीवन की अनेक घटनाओं और उनके कथनों को एकत्र करके सुरक्षित कर दिया । बौसवैल का सौभाग्यवान हृदय जानसन के जीवन की जिन सुन्दरताओं को देख सकता था, उन्हें और व्यक्ति नहीं देख सकते थे । बौसवैल के लिए डाक्टर जानसन के मुख से निकला हुआ एक-एक शब्द महत्व रखता था । डाक्टर जानसन की मृत्यु के बाद बौसवैल ने उनका जीवन-चरित्र लिखा । बौसवैल कोई प्रसिद्ध लेखक नहीं थे, परन्तु उनकी अगाध श्रद्धा ने उन्हें अपने गुरु के जीवन के इतने सुन्दर रूप में दर्शन करने के योग्य बना दिया था कि उनका लिखा हुआ जीवन-चरित्र जीवन-चरित्रों की दुनियां में वही स्थान रखता है, जो स्थान नाटकों की दुनिया में शेक्सपीयर के नाटकों को प्राप्त है । श्रद्धा के भाव ने उसे एक अमर लेखक बना दिया । कहा जाता है, डाक्टर जानसन अपनी रचनाओं से इतने प्रसिद्ध नहीं

हुए, परन्तु बौसवैल के लिखे हुए जानसन के जीवन-चरित्र ने उन्हें अमर बना दिया ।

विद्यार्थी – क्या आप कृपा करके बतलाएँगे, कि श्रद्धा का यह गुण माता-पिता के साथ हमारे सम्बन्ध को श्रेष्ठ बनाने में क्योंकर सहायता करता है ?

शिक्षक – अब मैं माता-पिता के विषय को लेता हूँ । एक सम्राट् के बारे में यह कहा जाता है कि जब किसी ने उससे पूछा कि वह दाढ़ी क्यों रखता है, तो उसने उत्तर दिया, "मैं दाढ़ी इसीलिए रखता हूँ कि संसार का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति भी दाढ़ी रखता था ।" इससे उसका अभिप्राय अपने पिता से था । श्रद्धा के भाव ने ही सम्राट् को पिता के सम्बन्ध में ऐसी सुन्दर दृष्टि प्रदान कर दी थी । अब इसके विपरीत मैं आपको सुनाऊँगा कि अश्रद्धा ने एक कालिज के विद्यार्थी को किस अवस्था में पहुँचा दिया । यह विद्यार्थी एक दिन मेरे पास आया और अपनी शादी पर जाने के लिए छुट्टी माँगी । मैंने कहा, तुमने तो अभी B.A. भी पास नहीं किया, फिर शादी में इतनी शीघ्रता क्यों ?" मैं चकित रह गया जब उसने उत्तर दिया, "हमारे घर में जो बूढ़ा है और जो बहुत पुराने विचार रखता है, तथा जिसकी बुद्धि जवाब दे चुकी है, मुझे शादी करने के लिए बाध्य कर रहा है ।" मैंने कहा, "प्रिय बच्चे ! क्या अपने पिता के सम्बन्ध में तुम्हें ऐसे ही शब्द प्रयोग करने चाहिएँ ?" लड़का झट बोल उठा, "मेरे साथ जो ऐसा अन्याय कर रहा है, वह ऐसे ही शब्दों का अधिकारी है ।" अब इस लड़के के लिए यहाँ तक तो उचित था कि वह अपने पिता की बात मानने से सम्मानपूर्वक इन्कार कर देता । परन्तु यह कदापि उचित न था कि वह पिता के सम्बन्ध में इस प्रकार जहर उगले । अब आप लोगों ने समझ लिया होगा कि पिता के प्रति किसी पुत्र में सम्मान या श्रद्धा का न होना, कैसे भयानक दृश्य पैदा करता है ।

विद्यार्थी – एक पुत्र के लिए अपने पिता के सम्बन्ध में ऐसी भाषा का प्रयोग अत्यन्त लज्जास्पद है । परन्तु हमें यह कैसे पता लगे, कि हम में श्रद्धा का अभाव है ?

शिक्षक – जिस लड़के का हृदय अपने पिता के सम्बन्ध में श्रद्धा और सम्मान से खाली होगा, उसकी किसी नीच वासना की यदि पिता की ओर से तृप्ति न होगी, तो वह पिता की निन्दा करने में सुख अनुभव करेगा । परन्तु जिसके अन्दर सच्चे सम्मान और श्रद्धा का भाव वर्तमान होगा, वह किसी और के मुख से भी अपने पिता की बुराई न सुन सकेगा । मैं आपको एक उदाहरण देता हूँ कि किस प्रकार एक श्रद्धावान् हृदय अपने श्रद्धा भाजन की बुराई सुनने में कष्ट अनुभव करता है । जब मैं स्कूल में पढ़ता था तो एक शिक्षक जो विद्यार्थियों को पीटा करते थे, हमारी चर्चा का विषय बने हुए थे । कुछ लड़के उनकी निन्दा करते थे । एक लड़के के दिल पर, जो आगे जाकर लोगों के लिए एक आदर्श व्यक्ति बना, इससे बड़ी चोट लगी और उसने यह कह कर अपने गहरे दुःख का प्रकाश किया, "क्या तुम्हें एक ऐसे उपकारी की निन्दा करते हुए शर्म नहीं आती कि जिनके चरणों में बैठ कर तुम रोज़ शिक्षा पाते हो ?" इस लड़के के श्रद्धा भाव का मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा । इस प्रकार जिनके हृदय में किसी के लिए श्रद्धा का भाव होता है, वह उसका गुणगान करते नहीं थकते, तथा उसकी बुराई सुनने से उनके दिल पर आघात लगता है ।

विद्यार्थी – क्या किसी की निन्दा करना पाप है ?

शिक्षक – अपने नीच भावों की तृप्ति के लिए किसी की बुराई करना निःसन्देह पाप है और फिर अपने किसी उपकारी की निन्दा करना तो अक्षम्य अपराध है । कहा जाता है कि एक बार सिकन्दर महान् के कुछ मन्त्रियों ने उससे शिकायत की, कि उसकी माता राज्य के कामों में अनुचित हस्तक्षेप करती हैं । सिकन्दर महान् अपनी माता के लिए गहरी श्रद्धा रखता था । धीमी आवाज़ में सिकन्दर ने अपने मन्त्रियों से कहा, "क्या तुम्हें पता नहीं कि मेरी माता का एक आँसू ही तुम्हारी सब शिकायतों को निरर्थक बना देगा !" एक महान् विजेता भी श्रद्धाभाव के कारण अपनी माता की बुराई सुनकर दुःखी हो उठा । नेपोलियन महान् के बारे में बताया जाता है कि जब वह फ्रांस का सम्राट् बन चुका था और जबकि दुनिया उसके नाम से थर्राती थी, तो एक दिन वह अपने बाग़ में टहल रहा था । क्योंकि वह सम्राट् था, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति जो उससे मिलने आता, रिवाज के अनुसार उसका हाथ चूमता था । संयोगवश उसकी माता भी उसके पास से गुजरी । विनोदमय ढंग से सम्राट ने अपना हाथ माँ की ओर चूमने के लिए बढ़ा दिया । इस पर उसकी माता ने महत्त्वपूर्ण शब्दों में कहा, "मेरे पुत्र, अपना हाथ पीछे हटा लो । यह हाथ है (अपना हाथ नेपोलियन की ओर बढ़ाते हुए) जो तुम्हें चूमना चाहिए, क्योंकि इसी हाथ ने तुम्हें वर्तमान अवस्था तक पहुँचाया है ।" सम्राट् ने जो माता को पूज्य समझता था दीनतापूर्वक अपनी माता के हाथ को चूम लिया । वह न केवल अपनी

माता के लिए श्रद्धा रखता था अपितु उस पर गर्व भी करता था ।

इन उदाहरणों के बिल्कुल विपरीत में आपको एक साधारण क्लर्क की घटना सुनाता हूं, जो अपनी पत्नी का इतना अनुरागी हो गया था, कि माता के प्रति उसका हृदय सम्मान से शून्य हो गया । एक बार जब वह अपने काम के स्थान से घर आया तो उसकी पत्नी ने तुरन्त ही उसकी माता के विरुद्ध कान भर दिये । दूसरे दिन सुबह ही उस क्लर्क ने अपनी माता से उत्तर माँगा कि वह उसकी पत्नी को क्यों तंग करती है ? माँ ने कहा, "मेरे बेटे ! क्या तुम इतनी जल्दी अपनी पत्नी के बहकावे में आ गए ? तुम भूल गए कि जब तुम्हारे पिता तुम्हें चार-पाँच वर्ष का छोड़ कर मर गए थे तो मुझे तुम्हारा पालन-पोषण करने तथा तुम्हें पढ़ाने के लिए बहुत तुच्छ काम भी करने पड़े थे। फिर जब तुम बड़े हुए तो इस लड़की के साथ जो आज तुम्हारी पूज्या बनी हुई है, तुम्हारा विवाह करने के लिए भी मुझे बहुत परिश्रम करना पड़ा था । अब मैं बूढ़ी हो गई हूँ । मुझे पता है कि युवा लड़कियां बहुत-सी बातों का अनुभव न होने के कारण कितनी हानियां उठाती हैं । इसी लिए मुझे उस पर कड़ी निगरानी रखनी पड़ती है, परन्तु तुम मुझे इन सारी सेवाओं के लिए धन्यवाद देने और उसकी हितकारी समझने के स्थान में उल्टा उसके कहने पर मुझसे बिगड़ बैठे । मुझे आश्चर्य तो इस बात का है कि बिना मेरी ओर से कुछ सुने ही तुमने मुझे बुरा-भला कहना शुरू कर दिया ।" यद्यपि माँ ने ये बातें समझाने के अभिप्राय से कही थीं, तो भी यह क्लर्क आपे से बाहर हो गया और एक हथियार उठा कर माता के सिर पर इस जोर से मारा कि उसके सिर से खून को धार बह निकली । मैं वहाँ उपस्थित था जहाँ कि यह बेचारी अपनी अश्रुपूर्ण आँखों के साथ अपने एक उपकारी के पास दौड़ती हुई आई, और अपने पुत्र की इस घृणित क्रिया का दुखड़ा रोया । माता के प्रति सम्मान से शून्य होने के कारण यह पुत्र उसके सम्बन्ध में पूरा पिशाच बन गया । अब तुम समझ सकते हो कि अपनी माता और बड़ों के प्रति सम्मान और श्रद्धा के भावों को विकसित करना कितना आवश्यक है । यदि हम इन भावों से शून्य हैं, तो हम मानवता से ही शून्य है।

विद्यार्थी — माता-पिता और बड़ों के प्रति सच्चे सम्मान और श्रद्धा का भाव इस सम्बन्ध में ठीक चलने के लिए हमारी किस प्रकार सहायता करता है ?

शिक्षक — जिस व्यक्ति में श्रद्धा होती है वह अपने श्रद्धाभाजन को महान् समझता है—इतना महान् कि वह उस सम्बन्ध को अपने नीच भाव से बिगड़ने नहीं देता । श्रद्धा भाव घमण्ड भाव को दबा देता है । घमण्ड भाव दूसरों के सम्बन्ध में हमारे सम्मान भाव को नष्ट कर देता है । हम अपने आप को बहुत बढ़िया और दूसरे को बहुत तुच्छ देखने लगते हैं । घमण्ड का यह भाव ही पवित्र से पवित्र सम्बन्धों को बिगाड़ देता है । इसका अधिकार हमें पागल बना देता है । हम दूसरों की किसी गिनती में नहीं लाते । श्रद्धाभाजन के सम्बन्ध में श्रद्धा का भाव ही हमारे घमण्ड को दबा सकता है । इसकी पुष्टि में कितने ही उदाहरण दिए जा सकते हैं ।

एक स्त्री अपने पड़ोस में बहुत झगड़ालू समझी जाती थी, परन्तु सौभाग्यवश वह अपने पति के प्रति बहुत श्रद्धा रखती थी । साधारणतः माता-पिता तथा पति-पत्नी के सम्बन्ध में परस्पर श्रद्धा का अभाव होता है, कारण यह कि जहाँ बाहर के विचार से निकटता होती है, वहां हृदयों में उदासीनता हो जाती है । परन्तु इस स्त्री के हृदय में अपने पति के लिए सच्चे सम्मान का भाव था । जहाँ वह स्त्री और किसी की जरा नहीं सुनती थी, वहाँ उसके पति का एक शब्द ही उसे चुप कराने के लिए काफ़ी था । एक बार उसके पति बीमार हो गए । यह स्त्री जिस प्रकार उसकी सेवा में अपने-आपको भुला देती थी वह दृश्य देखने के योग्य था । एक बार उसके पति ने जबकि वह बहुत उदास था, उसे गाना सुनाने के लिए कहा, ताकि उसे कुछ शान्ति प्राप्त हो । क्योंकि कई भद्र जन उसके पति के पास बैठे थे, इसलिए उसने गाने में कुछ झिझक महसूस की । पति ने कहा कि यदि आप गाना सुना सकें तो मेरा चित्त शान्त हो जाएगा । यह आश्चर्य की बात थी कि उसने सब प्रकार की झिझक से ऊपर होकर ऐसा गाना गाया कि जैसा पहले कभी न गाया था । गाना सुनाने के बाद उसने पति से पूछा—"मैं आपके लिए, जो कुछ मेरी सामर्थ्य में होगा, अवश्य करूंगी ।" जो भद्र जन वहाँ उपस्थित थे, पति के प्रति इस स्त्री के, जो औरों के सम्बन्ध में बहुत घमण्डी थी, श्रद्धा भाव को देख कर दंग रह गए ।

एक उच्च कुल के नवयुवक की घटना है कि वह विद्या का बड़ा प्रेमी था । उससे नीचे की जाति का एक व्यक्ति ग्रेजुएट बन चुका था । इस लड़के के दिल में इस ग्रेजुएट के लिए गहरी श्रद्धा उत्पन्न हो गई । यह उसके पास जाकर विद्या प्राप्त करता था और अपनी कृतज्ञता के प्रकाश में उसके कमरे में झाड़ू देता था, उसके लिए पानी लाता था, उसके पैर दबाता था, उस पर पंखा

करता था, उसके लिए बाजार से वस्तुएँ खरीद कर लाता था, और किसी भी प्रकार की सेवा करने में प्रसन्नता लाभ करता था । लोगों को यह बात चुभती थी कि वह एक उच्च कुल का लड़का होकर एक नीच कूल के व्यक्ति की इस प्रकार सेवा क्यों करता है । परन्तु वह लड़का सबको एक ही उत्तर देता था—"मेरे निकट वह इतने महान् हैं कि मैं उनकी सेवा करना अपना सौभाग्य समझता हूँ । मैं उनका कृतज्ञ हूँ, फिर वह मुझे ऐसी सेवा का अवसर प्रदान करते हैं ।" इस प्रकार श्रद्धा घमण्ड को दबा लेती है । यदि हम यह अनुभव कर लें कि घमण्ड ने कितने ही परिवारों को तबाह कर दिया है तो श्रद्धा हमें और नहीं तो इसीलिए अत्यन्त मूल्यवान् मालूम होगी कि यह घमंड के नशे को दूर कर देती है ।

विद्यार्थी — क्या कृपा करके घमण्ड के भयंकर परिणामों के सम्बन्ध में आप कुछ और उदाहरण दे सकेंगे ?

शिक्षक — ऐसे उदाहरण प्रत्येक घर की एक-एक दीवार पर अंकित हैं । एक विद्यार्थी ने अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ दी । एक नवयुवक ग्रेजुएट ने जो विद्या का बहुत कद्रदान था, इस विद्यार्थी को फिर से विद्या को प्राप्त करने की प्रेरणा दी । विद्यार्थी ने ऐसा ही किया । इस ग्रेजुएट ने उसे स्वयं पढ़ाना स्वीकार किया, और अपनी सहायता से उसे मैट्रिक पास करवा दिया । इसके बाद यह उसे कालिज ले गया, जहाँ वह स्वयं एल-एल० बी० में पढ़ रहा था । एक दिन ग्रेजुएट ने नवयुवक को जो कालिज में फस्ट-ईयर में पढ़ता था, उसकी किसी गलती के लिए कुछ कह दिया । नवयुवक जो महा घमंडी और सम्मान और श्रद्धा से शून्य था, इतना आपे से बाहर हो गया कि उसने अपने उस उपकारी शिक्षक से कहा, "तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मैं तुम्हें किसी भी गिनती में नहीं लाता, क्या हुआ अगर तुम ग्रेजुएट हो गए ? कुछ पुस्तकें रट कर तुमने परीक्षा पास कर ली है । कोई भी व्यक्ति ऐसा कर सकता है । फिर तुम किस बात के लिए अकड़ते हो ?" यह घमण्डी नवयुवक कभी ग्रेजुएट नहीं बन सका । घमण्ड भाव का ऐसा ही भयंकर परिणाम हुआ करता है ।

एक और लड़के की भी ऐसी ही घटना है, जिसने एम० ए० पास कर लिया था । एम० ए० कर लेने पर उसका अहंकार बहुत भयानक रूप धारण कर गया । यहाँ तक कि वह किसी को भी अपने से श्रेष्ठ नहीं समझता था । वह एक अच्छा लेखक बन सकता था, परन्तु वह इस अवसर से सदा के लिए वंचित हो गया । एक दिन उसने अपना लेख एक पत्रकार को दिखाया । पत्रकार ने उसके लेख की कुछ आलोचना की, जिस पर वह इतना बिगड़ा कि फिर उसने कभी पत्रकार का मुंह न देखा । यह एक सच्चाई है कि उस एम० ए० पास नवयुवक ने कभी कामयाबी का मुँह नहीं देखा । आखिरी समय तक उसका जीवन एक असफल जीवन रहा । उसने कभी कोई महत्वपूर्ण लेख न लिखा ।

अब तुम स्वयं अनुभव कर सकते हो कि यह श्रद्धा का भाव जो घमण्ड को दबा सकता है कितना मूल्यवान है और इसके विकसित करने की कितनी बड़ी आवश्यकता है ।

6. माता-पिता तथा अन्य उपकारियों के प्रति कृतज्ञता की आवश्यकता

शिक्षक – मैंने अपनी पिछली बातचीत में सच्चे सम्मान और श्रद्धा भाव की नितान्त आवश्यकता को आपके हृदयों पर अंकित करने का यत्न किया था । यदि हमें यह पता चल जाए कि इसी भाव के द्वारा हम अपने माता-पिता और बड़ों के जीवन की सुन्दरता को देख सकते हैं, तो श्रद्धा की आवश्यकता के विषय में कोई मतभेद नहीं हो सकता । अनेक व्यक्ति इसलिए महान् बन गए, कि उनके हृदय इस भाव से विभूषित थे । धार्मिक दुनिया में पाल इसीलिए सेंट पाल बन गया कि वह यसू मसीह के लिए श्रद्धा रखता था, और इसीलिए मसीह के गुण भी उनमें आ गए थे । मुसलमानों में ख़लीफ़ा अली जो इस्लाम के बानी का चचेरा भाई था, इसलिए अमर हो गया कि वह इस्लाम के बानी का श्रद्धावान् था । इस्लाम के बानी के और भी कितने सम्बन्धी थे, परन्तु मुस्लिम इतिहास में आज उनका कोई निशान नहीं है । कारण यही है कि वे श्रद्धा से शून्य थे । और उसके जीवन की किसी विशेषता को देख नहीं सके । सिक्ख इतिहास में भाई बाला और मरदाना ने गुरू के प्रति श्रद्धा होने के कारण कीर्ति प्राप्त की । कादयानी मत का वर्तमान नेता इस मत के संस्थापक का अपना ही पुत्र है । पिता के प्रति गहरे श्रद्धा भाव ने उसे पिता के लिए जीने और उसी की महिमा गाने में अपनी शक्तियाँ अर्पण करने के योग्य बना दिया । इसी भाव ने उसे कादयानी सम्प्रदाय का नेता बना दिया । मुक्ति फ़ौज के संस्थापक का पहला उत्तराधिकारी उसका अपना पुत्र और वर्तमान उत्तराधिकारी उसकी अपनी लड़की है । उन दोनों ने इसलिए सुख्याति लाभ की, कि पिता के प्रति उनके हृदय में श्रद्धा वर्तमान थी, और इसीलिए उन्होंने पिता के गुणों को भी प्राप्त कर लिया था । उसके कार्य को अपना कार्य बना लिया था, तथा उस कार्य के लिए अपना सर्वस्व अर्पण किया था ।

ये दृष्टान्त बताते हैं कि <u>साधारण व्यक्ति भी संसार में इसलिए महान् व्यक्ति बन गए कि उन्होंने श्रद्धा भाव के द्वारा अपने श्रद्धाभाजन के गुणों को ग्रहण किया और उनके कार्य को सुन्दर रूप में उपलब्ध करके अपने जीवन का कार्य बना लिया ।</u> आाखिर कोई व्यक्ति अपने-आपको किसी ऐसी ही वस्तु के लिए तो अर्पण करेगा, जिसकी सुन्दरता उसे आकृष्ट करती हो । यदि किसी ने अपनी शक्तियाँ किसी श्रेष्ठ वस्तु के लिए अर्पण करनी हों तो यह आवश्यक है कि पहले वह श्रेष्ठ वस्तु सुन्दर प्रतीत हो । श्रद्धाभाजन के जीवन की ऊँचाई के निकटतम पहुँचने के लिए श्रद्धा ही एकमात्र सीढ़ी है ।

विद्यार्थी – परन्तु साधुओं के प्रति श्रद्धा का होना ही लाखों हिन्दू परिवारों की महा हानि का कारण नहीं बनता ?

शिक्षक – निःसन्देह ! परन्तु ऐसी हानि अन्धी श्रद्धा के द्वारा ही होती है । सच्ची श्रद्धा तो उच्च चरित्र की सुन्दरता के प्रति ही हुआ करती है । संस्कार मूलक श्रद्धा अन्धी श्रद्धा होती है और सदा ही भयानक होती है, इसीलिए अन्धी श्रद्धा के कारण भारतवासी करोड़ों रुपया हर महीने बरबाद करते हैं । परन्तु झूठे सिक्कों की वर्तमानता से यह सिद्ध नहीं होता कि सच्चे सिक्के हैं ही नहीं । मुझे ऐसे कई जनों और जन-समूहों का पता है, जिन्होंने रीति-रिवाज और रूढ़िवाद के प्रति घृणा उत्पन्न करने के आवेश में बहुत सख्त गलतियाँ की हैं और अपने अनुयायियों के हृदय से श्रद्धा के भाव को ही नष्ट कर दिया है । और इसका परिणाम ? परिणाम यह है कि उनके अनुयायियों में यद्यपि मिथ्या विश्वासों के प्रति कितनी ही घृणा पैदा हो गई हो, परन्तु उनके भीतर किसी पवित्र व उच्च वस्तु के लिए सच्चे सम्मान अथवा सच्ची श्रद्धा के बहुमूल्य भावों का भी नाश हो गया । ऐसे जनों के निकट कोई वस्तु भी पवित्र नहीं । अब, क्योंकि नीच घृणा आत्मा की खुराक नहीं, अपितु उसके लिए विष के समान है, इसलिए नीच घृणा ने उनके सात्विक भावों को इतना विषाक्त कर दिया है कि जिस हथियार को उन्होंने मिथ्या विश्वासों के विरुद्ध उठाया था, उसी को बाज वे एक-दूसरे के विरुद्ध काम में ला रहे हैं । श्रद्धा के नाश ने उनको बर्बर, गुस्ताख, झगड़ालू और कई दशाओं में पशुओं से भी निकृष्ट बना दिया । यह श्रद्धाविहीन और घमण्डी लोग दूसरों के जीवन के सौन्दर्य को देखने के ही अयोग्य हो गए हैं । और इसी लिए अपने जीवन में भी उन सुन्दरताओं को ग्रहण करने के सब अवसर खो बैठे हैं । अतएव सच्ची श्रद्धा को इसलिए नष्ट कर देना कि दुनिया में अन्धी श्रद्धा भी है, सर्वथा पागलपन है ।

विद्यार्थी – हम इस श्रेष्ठ भाव की आवश्यकता को भलीभांति समझ गए हैं कि जो हमें अपने भीतर विकसित करना चाहिए ।

शिक्षक – दूसरा सद्गुण जिसके विषय में मैं बताना चाहता हूँ वह कृतज्ञता है । कृतज्ञता एक ऐसा दुर्लभ गुण है कि जिसका मानव संसार में बहुत अभाव है । आप अंग्रेजी भाषा की उस कहावत को जानते होंगे जिसका अर्थ है, "इतना कृतघ्न जितना कि एक बेटा ।" अब बेटा अपने माता-पिता से सबसे अधिक उपकार पाता है । वह बेटा यदि माता-पिता से महान् उपकार

पाकर भी उनके सम्बन्ध में इतना उदासीन प्रमाणित हो सकता है , तो वो किसी और से उपकार पाकर उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार की कोई सेवा कैसे कर सकता है । इस विचार से पशुओं ने मनुष्यों की अपेक्षा अच्छे दृष्टान्त प्रदर्शित किए हैं ।

विद्यार्थी – वह किस प्रकार ?

शिक्षक – इतिहास ऐसे घोड़ों की कथाओं से भरा पड़ा है, जिन्होंने अपनी जान पर खेल कर अपने स्वामी की रक्षा की है । ऐसी भी घटनाएँ हैं जिनमें घोड़ा उस जगह से नहीं हिला कि जिस जगह पर उसका स्वामी गिर गया हो । ऐसे घोड़ों ने भूख से प्राण दे दिए, परन्तु अपने स्वामी की रक्षा करना नहीं छोड़ा । कितने ही ऐसे घोड़े हैं कि जिनकी सारी नसल ही कृतज्ञ होती है, और कुत्तों की कृतज्ञता तो बहुत ही प्रसिद्ध है । केवल एक-दो कुत्तों का जिक्र नहीं, उनकी नसलों की नसलों ने कृतज्ञता और स्वामी-भक्ति के विस्मयजनक दृश्य दिखाये हैं । मैंने बचपन में कुत्तों की कृतज्ञता की कई कहानियां पढ़ी थीं । एक कुत्ता जिसकी कहानी मुझे याद है, एक बार अपने स्वामी के लड़के के साथ बर्फ से ढके हुए एक पर्वत पर चला गया । लड़का फिसल कर एक गहरी खड्ड में जा गिरा । कुत्ता वापिस आया और रोटी लेकर ग़ायब हो गया । अगले दिन भी उसने ऐसा ही किया । एक पड़ोसी ने कुत्ते के इस अनोखे व्यवहार की तरफ उसके स्वामी का ध्यान फेरा । इस पर वह लोग कुत्ते के पीछे-पीछे हो लिए । उन्होंने देखा कि कुत्ता पहाड़ पर चढ़ रहा है। उन्होंने भी उसके साथ-साथ चढ़ना शुरू किया । आखिर उन्होंने कुत्ते को एक स्थान से नीचे कूदते देखा । और वे यह देखकर चकित रह गए कि लड़का वहाँ मौजूद है और रोटी उसके सामने रखी हुई है । ऐसे दृष्टान्त अनेक है ।

विद्यार्थी – कुत्ते वास्तव में ही बड़े कृतज्ञ होते हैं।

शिक्षक – मैं आप को एक और कुत्ते की कहानी सुनाता हूँ, जो इससे भी अधिक हृदय-स्पर्शी है ।

एक पश्चिमी देश में एक बार कुत्तों पर टैक्स लगा दिए गए । एक निर्धन आदमी के पास भी एक कुत्ता था, परन्तु वह बेचारा टैक्स नहीं दे सकता था । वह निष्ठुर मनुष्यों के रहम पर ही उसे गलियों में छोड़ देना नहीं चाहता था । इसलिए उसने कुत्ते को मार डालना ही अधिक दयामूलक व्यवहार समझा । इस उद्देश्य को लेकर उसने कुत्ते की गर्दन में एक भारी पत्थर बाँध दिया और एक नदी के बीच में ले जाकर डूबने के लिए छोड़ दिया । संयोगवश वह रस्सी जिससे पत्थर बंधा हुआ था, टूट गई और कुत्ता बच गया । इधर दुर्भाग्यवश कुत्ते का स्वामी फ़िसल कर डूबने लगा । कुत्ता अपने साथ किए गए स्वामी के व्यवहार को भूल कर उसकी सहायता के लिए लपका । और उसके बाल पकड़ कर उसे किनारे पर खींच लाया । इस प्रकार उसने अपने स्वामी की प्राण रक्षा की । स्वामी का दिल हिल उठा । उसने कुत्ते को छाती से लगा लिया और कहा मैं तुम्हें मारना चाहता था और तुमने मुझे बचा लिया । आज से चाहे मुझे भूखा रहकर भी टैक्स भरना पड़े, परन्तु तुम्हारा मैं त्याग न करूंगा ।

विद्यार्थी – यह कथा बहुत ही हृदय स्पर्शी है ।

शिक्षक – मैं एक घटना और सुना कर समाप्त करूंगा । मेरे प्रान्त में एक पर्वत के शिखर पर एक कुत्ते की समाधि है । उसके जीवन का वृतान्त हमारी एक पाठ्य पुस्तक में दिया हुआ था । इस कुत्ते का स्वामी इसे लेकर किसी दूर के स्थान में चला गया। उसके पास जो रुपया था, वह खर्च हो गया । वह एक परिचित जन से जो कुत्ते के प्रति उसके प्रेम को जानता था, रुपया उधार लेने के लिए गया, ताकि वह अपने घर पहुँच सके । परिचित व्यक्ति ने उसे रुपया दे दिया और कुत्ते को धरोहर के रूप में रख लिया । कुत्ते के स्वामी ने कुत्ते को वहाँ ठहरने का संकेत किया । कुत्ता अपने स्वामी का आशय समझ गया और वहीं ठहर गया । इसके कुछ दिन पश्चात् कुत्ते के नए मालिक के घर में चोर घुस आए । कुत्ते ने बहुत वीरता के साथ नए स्वामी के घर और सम्पत्ति की चोरों से रक्षा की । यह स्वामी कुत्ते पर इतना प्रसन्न हुआ कि कुत्ते को उसके पुराने स्वामी के पास जाने के लिए मुक्त कर दिया । कुत्ता समझ गया और प्रसन्न-चित वहाँ से चल दिया । इसी बीच में कुत्ते का पुराना स्वामी उसे छुडाने के लिए आ रहा था । कुत्ता जब उस स्थान पर पहुँचा कि जहाँ समाधि बनी हुई है, तो वहाँ अपने पुराने स्वामी से उसकी भेंट हुई । कुत्ते का स्वामी यह समझ कर कि कुत्ता उसके वचन पालन करने से पहले ही भाग आया है, उस पर बहुत क्रोधित हुआ और कहा जाता है कि स्वामी के इस कठोर व्यवहार से कुत्ते का दिल टूट गया और उसने वहीं प्राण त्याग दिए । यह भी सम्भव है कि स्वामी ने स्वयं उसे मार दिया हो । परन्तु कहानी यह बताती है कि कुत्ता इस दुर्व्यवहार को सहन न कर सका और इसलिए मर गया । जब यह स्वामी अपने ऋण दाता के पास गया, और उसे रुपया चुकाने लगा तथा क्षमा-याचना करने लगा कि कुत्ते ने

समय से पहले ही भाग कर उसके वचन को तोड़ दिया है तो ऋण-दाता ने उत्तर दिया, "आपसे मुझे कुछ नहीं लेना है । कुत्ता आप का ऋण चुका कर ही मेरे घर से गया है । उसने मेरा घर, सम्पत्ति और जान बचाई है।" यह सुन कर कुत्ते का स्वामी कातर होकर आश्रुपात करने लगा । वापस लौटकर उसने कुत्ते के मृत शरीर पर पत्थर की एक समाधि बनवाई जो कि आज तक वर्तमान है ।

विद्यार्थी – यह पशु हमारे हार्दिक स्नेह के अधिकारी हैं ।

शिक्षक – आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि पश्चिमी देशों में पशुओं ने मनुष्यों के हृदय पर इतना अधिकार कर लिया है कि पीड़ित पशुओं के लिए सहायता की अपील होने पर बहुत बड़ी मात्रा में धन एकत्र हो जाता है, जबकि पीड़ित मनुष्यों की सहायता के लिए इतना धन एकत्र नहीं होता ।

विद्यार्थी – यह तो बड़े आश्चर्य की बात है । परन्तु क्या यह सच है ?

शिक्षक – निस्सन्देह ! यह बिल्कुल सच है । मैं आपको सुनाने के लिए आज पहली मार्च सन् 1938 का समाचार पत्र लाया हूँ ।

उसका सम्पादक लिखता है : "एक वर्ष भी नहीं बीता होगा कि जब प्रधान मन्त्री श्री नेवल चैम्बरलैन ने सारे देशवासियों से बरमिघम चिकित्सालय की सहायता के लिए रेडियो पर अपील की, उसके उत्तर में जनता की ओर से केवल 421 पोंड एकत्र हुए । इसी के दो मास पश्चात् सर राबर्ट गोवर ने पशु अत्याचार निवारणी रॉयल सोसायटी के लिए, जिसकी सेवाएँ अत्यन्त प्रशंसनीय थीं, अपील की । धन की आवश्यकता रोगी पशुओं के चिकित्सालय के लिए थी । यह अपील देश की सारी जनता तक नहीं पहुँची थी, फिर भी जितने लोगों ने उसे सुना, उन्हीं से 1,325 पौण्ड 7 शिलिंग और 7 पैन्स एकत्र हुए ।"

"इसी प्रकार एक बार रोगी पशुओं के एक चिकित्साघर के लिए, जिसे गरीब आदमियों ने स्थापित किया था, केवल एक बार रेडियो द्वारा अपील होने पर 1,812 पौंड की बड़ी रक़म इकट्ठी हो गई । परन्तु न जाने क्यों जब श्री टी० वैलन ने शिशु सहायक समाज की सहायता के लिए देश से अपील की तो लाखों सुनने वालों ने केवल 690 पौंड ही दिये । इससे भी अधिक मजे की बात तब हुई जब मिस आइरीन वान बर्ग ने क्लोप्टन अस्पताल के लिए एक हृदय स्पर्शी अपील की, तो उस रात्रि में एकत्र हुई बहुत बड़ी जनता ने केवल 41 पौंड 2 शिलिंग 7 पैन्स दान में दिए ।"

तब आप देख सकते हैं कि जनता पीड़ित मनुष्यों की अपेक्षा पीड़ित पशुओं के लिए अधिक दान देती है ।

एक विद्यार्थी – क्या यह उचित है ?

शिक्षक – नहीं ! मनुष्यों को साथी मनुष्यों के लिए अधिक सहानुभूति रखनी चाहिए । परन्तु प्रश्न जो आपको पूछना चाहिए, यह है कि ऐसा क्यों है !

विद्यार्थी – (एक स्वर में) निस्सन्देह । आप ठीक कहते हैं । कृपया बताएँ कि ऐसा क्यों है ?

शिक्षक – ऐसा इसलिए है कि मनुष्य पशुओं की थोड़ी-बहुत सेवा करता है, उसके बदले में उनसे बहुत बढ़-चढ़ कर सेवा और कृतज्ञता पाता है । परन्तु साथी मनुष्यों से साधारणतः वह कृतघ्नता मूलक व्यवहार ही प्राप्त करता है ।

विद्यार्थी – क्या सचमुच ऐसा ही है ।

शिक्षक – मैं इस बात को स्पष्ट करने वाली एक घटना आपको सुनाता हूँ ।

एक बार महात्मा विद्यासागर से किसी ने शिकायत की कि अमुक व्यक्ति आपको गालियाँ दे रहा था । विद्यासागर सोच में पड़ गए और कुछ मिनट के पश्चात् आश्चर्य से उस व्यक्ति से कहा—जहाँ तक मुझे याद है मैंने तो उसका कोई भला नहीं किया, फिर न मालूम वह मुझे क्यों गाली देता है ? महात्मा विद्यासागर का यह कटु अनुभव था कि उनसे उपकार पाने वाले ही बहुधा

उनकी बुराई करते थे । देव समाज में भी हम लोगों का ऐसा ही कटु अनुभव हैं कि जिन लोगों ने देव समाज के संस्थापक से असंख्य उपकार पाए और उन्हें उन्होंने अपने मुँह से स्वीकार किया, और कई जन बहुत निम्न श्रेणी के जीवन से उन्नत होकर बहुत उच्च स्थान पा गए, क्योंकि देव समाज के संस्थापक ने उनके जीवन में ऐसा उच्च परिवर्तन उत्पन्न कर दिया था, उन्हीं लोगों ने उनको सताने में सबसे अधिक भाग लिया । यह कृतघ्नता घोड़ों, गायों, भेड़ों तथा बकरियों में नहीं पाई जाती मुझे याद है कि एक बार एक महापुरुष ने अपने श्रोता गणों को बताया था, "यदि तुम किसी गाय की सेवा करोगे तो यह तुम्हें दूध प्रदान करेगी, कुत्ते की सेवा करोगे तो वह चोरों से तुम्हारे घर की रखवाली करेगा, परन्तु यदि तुम किसी मनुष्य की सेवा करोगे तो उसका पहला काम घर की स्त्रियों को अपवित्र दृष्टि से घूरना या उनके सम्बन्ध में कोई अनुचित क्रिया करना होगा ।" इन शब्दों में उस महान् पुरुष ने मनुष्यों और हितकर पालतू पशुधों में अन्तर दिखाया था । यह एक आम शिकायत है कि नौकर न केवल अपने स्वामी का धन चुरा लेते हैं, अपितु उसकी इज्जत पर भी हाथ डालते हैं । ऐसी कितनी घटनाएँ मिलती हैं जिनमें नौकर अपने स्वामी के धन, माल अथवा उसके घर की किसी स्त्री को लेकर भाग गया । अपने उपकारियों के प्रति मनुष्यों के इसी दुर्व्यवहार के कटु अनुभव के कारण लोगों के दिलों में यह धारणा बन गई है कि मानव हृदय में कृतज्ञता का बहुत दुखप्रद अभाव है । अतएव "टिट बिट्स" से निम्नलिखित समाचार पढ़ कर हमें विस्मित नहीं होना चाहिए ।

"लंकाशायर के आडिण्कटन नगर में बेकारी अब भी एक विकट समस्या है । वहाँ कितने ही बच्चे, पुरुष और स्त्रियाँ सहायता के पात्र हैं । परन्तु जब श्रीमती एम० एम० सी व्हैले, जो आडिण्कटन के अधिकांश भाग की मालिक थीं, का देहान्त हुआ, तब अपनी सम्पत्ति का अधिकांश भाग लण्डन के कुत्तों के लिए छोड़ गईं ।" समाचार पत्र के सम्पादक ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा था—"यह परमार्थ है या मूर्खतापूर्ण भावुकता । हम पूछते हैं कि क्या सचमुच ही यह मूर्खतापूर्ण भावुकता है ? क्या यह नहीं हो सकता कि श्रीमती व्हैले का मनुष्यों के सम्बन्ध में कोई कड़वा अनुभव हो ।"

हम इस बात से सहमत हैं कि पीड़ित पशुओं की तुलना में पीड़ित मनुष्यों की अवहेलना करना भारी भूल है । इस सद्गुण के विषय में अधिक वर्णन अगली बार करूंगा ।

7. कृतज्ञता की आवश्यकता

शिक्षक — पिछली बार मैंने आपको यह बताया था कि अपने प्रति मनुष्यों और पशुओं के व्यवहार को देखकर मनुष्यों को यह विश्वास हो गया है कि पशुओं में जितनी कृतज्ञता है उतनी मनुष्यों में नहीं । "टिट बिट्स" में से मैंने इसके कई उदाहरण दिए थे, कि कैसे पीड़ित पशुओं के लिए अपील पर पीड़ित मनुष्यों की अपेक्षा अधिक धन एकत्र हो जाता था । हम सच्ची घटनाओं से इन्कार नहीं कर सकते ! वह हमें माननी ही पड़ती हैं परन्तु यह खेद का विषय है कि फिर भी मनुष्यों का अपने भीतर कृतज्ञता के भाव को विकसित करने की ओर ध्यान नहीं जाता और इससे भी बढ़कर दुखदायी बात यह है कि उसे उसकी आवश्यकता तक अनुभव नहीं होती ।

एक विद्यार्थी — क्या आप हमें यह समझाने की कृपा करेंगे कि हमें कृतज्ञता की क्यों आवश्यकता है ?

शिक्षक — वास्तव में दूसरों के उपकारों का पहला असर यही होना चाहिए कि हम उनके लिए कृतज्ञता अनुभव करें । मानव जीवन की एक महान् सच्चाई यह है कि वह असंख्य उपकारियों से उपकार लाभ करता है । मनुष्य का जीवन उसके माता-पिता की देन है । मातृ-गर्भ में प्रत्येक बच्चा माता के रुधिर से अपने शरीर का निर्माण करता है । जब वह जन्म लेता है तो सबसे प्रथम माता-पिता ही उसे अपना स्नेह प्रदान करते हैं और उसके अनन्तर भी वर्षों तक लगातार उस पर अपनी सेवाएँ न्यौछावर करते हैं । अब मनुष्य को कम से कम इतना तो अवश्य चाहिए कि वह उनके उपकारों को स्मरण करे और उनके लिए अपने आपको आभारी अनुभव करे । यदि मनुष्य इन सब उपकारों के ऋण को अनुभव कर सके तो उसका हृदय कोमल हो जायेगा और अपने माता-पिता पर और अधिक भार डालने की बजाय वह उनके पिछले उपकारों के लिए ही अपने आपको ऋणी अनुभव करेगा । यह भाव उसको मजबूर करेगा कि वह उनकी सेवायों के बदले में स्वयं भी उनकी कोई सेवा करे । इस प्रकार इसका पहला फल आपस की सेवा होगा । क्या परस्पर सेवा का यह भाव घर में एक उत्तम वातावरण उत्पन्न न करेगा ?

विद्यार्थी — निस्सन्देह ! परन्तु क्या हमारी पालना करना माता-पिता का कर्तव्य नहीं ?

शिक्षक — बेशक हमारी सेवा करना माता-पिता का कर्तव्य है । परन्तु क्या हमारा कर्तव्य उनके उपकारों को भूल जाना और उनके प्रति कृतघ्न बनना ही है । आप ही बतलाएँ कि आपके विचार में कृतज्ञ होना अच्छा है या कृतघ्न बनना ? मैं दो उदाहरण देता हूँ और फिर आप स्वयं निर्णय कीजिए कि आपको दोनों में से कौन-सी वस्तु अधिक आकृष्ट करती है । ईसाईयों के इतिहास में दो नवयुवकों की एक सच्ची कहानी मिलती है, जिनकी पालना एक महापुरुष ने अपने घर में की थी । उसने केवल उन्हें पाला-पोसा ही न था, किन्तु उनकी पढ़ाई का सारा खर्च भी बर्दाश्त किया था और उन्हें अपने पाँव पर खड़ा होने के योग्य बनाया था । इस महान् पुरुष की एक लड़की थी । यह लड़की उन दोनों नवयुवकों में से एक के साथ जो वास्तव में श्रेष्ठ था—प्रेम करने लगी । लड़की की शादी उस नवयुवक से कर दी गई । कुछ काल के अनन्तर पति-पत्नी दोनों ईसाई बन गए । इसके कुछ समय बाद लड़की का पिता भी ईसाई बन गया । दूसरे नवयुवक ने इससे चोट खाकर अपने उपकारी, उसकी लड़की और उसके दामाद (अपने सहपाठी) को धन के प्रलोभन में आकर धोखे से शत्रुओं के हाथों में दे दिया । लड़की ऐसी अवस्था में जब उसे बच्चा होने वाला था, गिरफ्तार हो गई । उसके पति को भी पकड़ लिया गया और उसे असह्य यन्त्रणा पहुंचाकर मार देने का हुक्म दिया गया । लड़की को जब पति की इस महा दुखद मृत्यु का समाचार मिला तो उसके आघात से उसका गर्भपात हो गया और उसी दिन उसकी भी मृत्यु हो गई । यह था व्यवहार जो एक ऐसे व्यक्ति ने उसके साथ किया, जिसके साथ उन्होंने केवल भलाई ही की थी ।

दूसरी कहानी एक पठान की है, जो पहले कोयटा के एक दफ्तर में चपरासी था, परन्तु बाद में डाकुओं के साथ मिल गया था । चपरासी रहने के दिनों में उसका अफ़सर एक हिन्दू था, जो उस पर बहुत मेहरबान था । एक बार यह अफ़सर जो एक ऊँचे पद पर पहुंच गया था अपने प्रधान कार्यालय को वापिस जा रहा था । वह, उसकी पत्नी और उसके बच्चे एक ताँगे में सफ़र कर रहे थे । रास्ते से रात पड़ गई । ताँगे को डाकुओं के एक समूह ने घेर लिया और स्त्री के सब आभूषण तथा नकदी छीन लिए । उसी समय डाकुक्षों का सरदार आया और अपने साथियों से पूछा कि क्या वह अपना काम समाप्त कर चुके हैं ? हिन्दू अफ़सर ने डाकूलों के उस सरदार की आवाज़ को पहचान लिया और उसका नाम लेकर पूछा, "क्या तुम अमुक व्यक्ति नहीं हो जो मेरे दफ़तर में चपरासी थे ?" पठान ने अपने पुराने अफ़सर की आवाज़ को पहचान लिया और कहा, "क्या वास्तव में आप ही यहाँ

हैं और हमने आप को ही लूट लिया है ?" बाबू के यह उत्तर देने पर कि हाँ तुम्हारे आदमियों ने मेरा सब कुछ लूट लिया है, पठान ने कहा कि मुझे अत्यन्त खेद है । आप मेरे उपकारी हैं । मैंने आपका नमक खाया है । मैं आप से इस दुर्व्यवहार के लिए जो आप को हमारे हाथों सहना पड़ा, क्षमा प्रार्थना करता हूँ । आपका सब माल अभी लौटा दिया जायगा । इतना कहते हुए उसने अपने साथिओं को सब माल लौटा देने की आज्ञा दी और अफ़सर से कहा कि अब आप कुछ काल हमारे पास ठहर जाइए और मुझे अवसर दीजिए कि मैं आपकी सेवा करके आपके उपकारों का ऋण चुका सकूँ । अफसर को क्योंकि अगले दिन अपने स्थान पर पहुंचना था, उसने ठहरने में अपनी असमर्थता प्रकट की । इस पर उस पठान ने अपने कई विश्वासपात्र साथियों को आज्ञा दी कि वे उक्त अफ़सर के ताँगे के साथ जाएँ और उसे निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा कर आएँ ।

अब आप बतलाइए कि दोनों में से किस का व्यवहार आपको पसन्द है, कृतघ्न नवयुवक का या कृतज्ञ पठान का ?

एक विद्यार्थी – हम तो यह अनुभव करते हैं कि नवयुवक बहुत दुष्ट था जबकि पठान डाकू होते हुए भी प्रशंसा का पात्र था ।

शिक्षक – यदि दूसरे की कृतज्ञता तुम्हें इतना आकृष्ट करती है तो अपने लिए भी तुम्हारे भीतर ऐसा ही बनने की अभिलाषा होनी चाहिए ।

एक विद्यार्थी – परन्तु कृपा करके इसका कारण तो बताइए कि हम उतनी कृतज्ञता से क्यों खाली हैं कि जितनी हमारे भीतर होनी चाहिए ।

शिक्षक – इसका कारण मनुष्य का नित्य का बढ़ता हुआ स्वार्थ है और यह मनुष्य के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है । यह प्रायः उन सब अत्याचारों की जड़ है, जो एक मनुष्य दूसरे मनुष्य पर करता है । स्वार्थ मनुष्य को यहाँ तक पहुंचा देता है कि जिसका लहू उसके मुँह लग गया हो, उसे वह हड़प कर जाना चाहता है । मैं आपको एक कहानी सुनाता हूँ, जो स्वार्थ के भयंकर रूप को प्रकट करती है । एक व्यक्ति शेर का एक बच्चा खरीद लाया । उसने बड़े स्नेह से उसका पालन किया और वह बच्चा बड़ा होकर एक पालतू शेर बन गया । शेर अपने स्वामी से प्रेम प्रकट करता था और सदा स्वामी के साथ-साथ रहता था । स्वामी यदि जंगल में सो जाता तो शेर उसकी रखवाली करता । एक दिन ऐसा हुआ कि स्वामी के हाथ में चोट लगने से घाव हो गया । घाव से खून बहने लगा । शेर ने यह खून चाटना आरम्भ किया । स्वामी इससे पीड़ा अनुभव करके जाग उठा । शेर खून चाटता रहा और जब स्वामी ने उसको रोकना चाहा तो स्वामी पर आक्रमण करके उसके जीवन का अन्त कर दिया । दरिन्दे शेर पर जब स्वार्थ का अधिकार हो गया तो उसने अपने स्वामी को ही मार डाला ।

विद्यार्थी – क्या कृतघ्नता का प्रकाश उपकारियों के प्रति ही हो सकता है या औरों के प्रति भी ?

शिक्षक – कृतज्ञता और कृतघ्नता दोनों उपकारियों के सम्बन्ध में ही प्रकाश पाती हैं । कृतज्ञता वह भाव है जिसके द्वारा मनुष्य अपने सहायक के प्रति अपने को ऋणी अनुभव करता है । जब कोई मनुष्य किसी की सेवाओं के बदले में स्वयं भी कोई सेवा करना चाहता है तो इसे ऋण चुकाना कहा जाता है । अतएव कृतज्ञता वह भाव है, जिससे परिचालित होकर हम अपने उपकारी के उपकारों का ऋण चुकाते हैं तथा कृतघ्नता वह भाव है, जिससे हम उपकारी के ऋण को दबा लेते हैं । हाँ, इससे भी आगे अपने उपकारी को सताते या हानि पहुंचाते हैं । कृतघ्नता महा भयानक पाप है, क्योंकि इससे परिचालित होकर एक ऋणी न केवल उस ऋण को नहीं चुकाता अपितु ऐसे उपकारी को, जिससे उसने महान् उपकार और सेवाएँ पाई हों, सताता और हानि पहुंचाता है । इसीलिए यह प्रसिद्ध है कि जो जन अपने उपकारी को हानि पहुंचा सकता है, वह सबको ही हानि पहुंचा सकता है ।

एक विद्यार्थी – क्या हम सभी दूसरों से उपकार पाते हैं ?

शिक्षक – निस्सन्देह ! हम में से प्रत्येक ही दूसरों से उपकार पाता है । जैसा कि मैंने बताया था, हमारा सारा अस्तित्व ही माता-पिता की देन है । उनके बिना हमारी कोई हस्ती नहीं थी । मातृगर्भ में माँ का रुधिर ही हमारे शरीर को बनाता है । हमारा जन्म हो जाने पर हमारा पहला आहार माता का दूध ही होता है । हम अपने बाल्यकाल से माता-पिता तथा भाई-बहिनों के निरन्तर त्याग, सेवा और रक्षा के द्वारा ही बड़े होते हैं । विद्या-आरम्भ से लेकर विद्या समाप्त करने के समय तक हम शिक्षकों, पुस्तक रचयिताओं, सहपाठियों तथा सरकारी व पब्लिक संस्थाओं आदि से असंख्य उपकार लाभ करते हैं । वास्तव में हमारा सारा

अस्तित्व ही उन सहस्रों और लाखों जनों की देन है जिन्होंने साक्षात् वा परोक्ष रूप से उसके बनाने में भाग लिया ।

अब हमारे भीतर प्रश्न उत्पन्न होना चाहिए कि यह सब उपकार पाकर हमारा हृदय क्या अनुभव करता है ? क्या हमारी अवस्था उस शेर की सी है जो एक बार अपने उपकारी का खून चख लेने पर उसके सारे खून का प्यासा बन गया था, अथवा हम उनके प्रति गाढ़ कृतज्ञता अनुभव करते हैं और उनके उपकारों का ऋण चुकाने के लिए अपने भीतर कोई व्याकुलता अनुभव करते हैं ?

विद्यार्थी – क्या सभी मनुष्य उपकारों को एक समान अनुभव नहीं करते ?

शिक्षक – कदापि नहीं । अधिकांश जनों पर स्वार्थी होने के कारण सेवाओं का फल उल्टा होता है अर्थात् वे सेवाएँ पाकर अधिक स्वार्थी बन जाते हैं । ऐसे जन बहुत ही थोड़े हैं जो किसी से सेवा पाकर कृतज्ञ अनुभव करते हों । निम्नलिखित दो दृष्टान्त इस सत्य को स्पष्ट कर सकते हैं ।

जब मैं वकालत करता था, तो एक घनी डाक्टर मेरे घर पर आया और उसने अपनी पीठ मुझे दिखाई जिस पर चोटों के निशान थे । बेचारा धनी डाक्टर रो पड़ा । उसने कहा मेरे अपने ही बेटे ने मुझे यह चोटें लगाई हैं । क्योंकि उसका व्यवहार मेरे साथ अच्छा नहीं था मैंने उसको अलग कर देना ही ठीक समझा । जब उसे अलग किया तो उसे पच्चीस हजार रुपये भी दे दिए । उसने वह सारा रुपया तो बरबाद कर दिया और अब और रुपया मुझसे माँगने लगा । मेरे इन्कार करने पर उसने मुझ पर हाथ उठाया और मुझे पीटा । वृद्ध होने के कारण मैं उससे अपनी रक्षा न कर सका । कृपया उसके विरुद्ध मुकद्दमा दायर कर दिजिए । इस सच्ची घटना से आप अनुमान कर सकते हैं कि एक बेटे के जीवन में उसके पिता की महान् सेवाओं का क्या फल हुआ । अब एक दूसरी कथा सेवा के स्वर्गीय फल की भी सुनिए ।

एक बड़े स्कूल में दो विद्यार्थी पढ़ते थे । एक दिन क्लास में कुछ झगड़ा हो गया । परन्तु जो विद्यार्थी बहुत अपराधी था वह चुपचाप वहाँ से खिसक गया और उसके स्थान में एक पूर्णतः निर्दोष विद्यार्थी को शिक्षक की मार सहनी पड़ी । इस विद्यार्थी के यह कहने पर कि मैं निर्दोष हूँ, शिक्षक ने असल अपराधी का नाम पूछा । इस पर जब यह निर्दोष विद्यार्थी चुप रहा तो शिक्षक ने उसे फिर पीटा । परन्तु इतने पर भी इस विद्यार्थी ने अपराधी लड़के का नाम न बताया । यह मामला यहीं समाप्त हो गया । इस घटना को कितने ही वर्ष बीत गए । अपराधी लड़का सुप्रीम कोर्ट का जज बन चुका था । एक बार निर्दोष विद्यार्थी राजद्रोही के रूप में अपने द्रोह का दण्ड पाने के लिए इसके सामने लाया गया । द्रोही के अपराधी होने में कोई सन्देह न था । विद्रोह का दण्ड फाँसी के सिवाए और कुछ न था । परन्तु जज ने पहचान लिया था कि राजद्रोही उसका वही पुराना सहपाठी है जिसने स्वयं मार खाकर उसे शिक्षक की मार से बचाया था । फैसला देने से पहले यह जज घोड़े पर काफ़ी लम्बा सफ़र करके प्रधान मन्त्री के पास गया और उसे यह बताकर कि द्रोही उसका उपकारी है, उसकी फांसी की सजा मुयाफ़ करवा ली । अगले दिन यह जज न्यायालय में आया और विद्रोही को फाँसी का फैसला पढ़कर सुनाया, परन्तु साथ ही यह भी बता दिया कि वह उसके लिए फाँसी का दण्ड मुआफ़ करवा चुका है । इस प्रकार जज ने अपने एक उपकारी के उपकार का बदला चुका दिया । उपरोक्त दोनों दृष्टान्तों से आप जान सकते हैं कि डाक्टर का बेटा अत्यन्त स्वार्थी प्रकृति रखने के कारण सेवा पाकर और भी अधिक स्वार्थी बन गया और जब उसको कुछ भाग मिल गया तो उसने बाक़ी का भी सब कुछ ले लेना चाहा । परन्तु दूसरी कहानी में उपकार का फल अति सुन्दर और स्वर्गीय देखा गया । एक विद्यार्थी ने अपने सहपाठी को शिक्षक की मार से बचाया और उसके बदले में उस कृतज्ञ सहपाठी ने इस विद्यार्थी की जान बचा दी ।

विद्यार्थी –तब तो स्वार्थ महा भयंकर है।

शिक्षक – निस्सन्देह ! स्वार्थ का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि स्वार्थी केवल अपने ही सुख को सम्मुख रखता है । अपने ही सुख का यह अनुचित और अत्यधिक प्यार उसकी प्रकृति को इतना निकृष्ट बना देता है कि वह अपने उपकारियों को भी हानि पहुँचाने को तैयार हो जाता है । वह कठोर, निर्दयी तथा अनुचित रूप से घृणाकारी बन जाता है । अतएव हमें यह स्पष्ट रूप से अनुभव कर लेना चाहिए कि श्रेष्ठ व्यक्ति बनने के लिए हमें श्रेष्ठ भावों की आवश्यता है और उनमें से एक कृतज्ञता का भाव भी है। एक लेखक ने कहा है–

"मनुष्य जाति की उच्च श्रेणियों में भी बच्चों में जंगली लोगों की ही भाँति कृतज्ञता का अभाव होता है या नाम मात्र कृतज्ञता होती है । एक बच्चे ने चाहे कितने ही उपकार पाए हों और उपकारियों ने उसके लिए चाहे कितने ही त्याग किए हों परन्तु वह

अपने आपको तनिक भी उपकृत अनुभव नहीं करता । वर्षों के बाद जब वह मुँह से "धन्यवाद" का शब्द उच्चारण करना सीख जाता है तब भी उस शब्द का साथ देने वाला कोई भाव उसके हृदय में नहीं होता । यह धन्यवाद का शब्द हृदय से निकला हुआ नहीं होता । लड़के और लड़कियाँ काफ़ी आयु को पहुँच कर भी बहुमूल्य उपकारों और सेवाओं को झट भूल जाते हैं । यहाँ तक कि बड़ी आयु के लोगों में भी साधारणतः यही देखा जाता है कि वे सेवाओं और उपकारों को बहुत थोड़ा अनुभव करते हैं और कुछ समय के अन्दर-अन्दर ही भूल जाते हैं । इसी प्रकार सेवा करने वालों की सेवाओं में भी दिखावे और स्वार्थ की खोट मिली हुई होती है । उनकी सेवा विशुद्ध नहीं होती ।"

इस महान् लेखक के उपरोक्त शब्द कितने सत्य हैं और हमारे इस विश्वास की कैसी पुष्टि करते हैं कि मनुष्यों की उच्च श्रणियों में कृतज्ञता लेश मात्र ही पायी जाती है ।

विद्यार्थी –क्या कृतघ्नता ही एक बुराई है जो स्वार्थ से उत्पन्न होती है ?

शिक्षक – यह बहुत-सी बुराइयों में से केवल एक बुराई है । यह अपनत्व का अत्यधिक और अनुचित प्यार ही है कि जिसने परिवारों, जातियों और देशों में शान्ति और सहयोग के जीवन को प्रायः असम्भव बना दिया है, यद्यपि बड़े-बड़े विचारशील परस्पर मेल और सद्भावना को उत्पन्न करने के लिए अपना सारा बल लगा चुके हैं । अगली बार, जब हम स्वार्थपरता के विषय में ही बातचीत करेंगे, तो मैं बताऊँगा कि यह महा निकृष्ट भाव केवल साधारण मनुष्यों और उनसे नीचे के साधारण अस्तित्वों के सम्बन्ध में ही नहीं, अपितु हमारे प्रियतम और निकटतम सम्बन्धियों और उपकारियों के सम्बन्ध में भी हमें हानि करने का इच्छुक और हानि करने वाला बनाता है ।

विद्यार्थी – क्या कोई ऐसा उपाय नहीं कि जिससे कृतघ्नता से मोक्ष प्राप्त हो सके और कृतज्ञता का अति हितकर भाव विकसित हो सके ?

शिक्षक – अवश्य है । आज समय बहुत हो चुका है । इसलिए इस विषय में हम कल बातचीत करेंगे ।

8. कृतज्ञता की उत्पत्ति के लिए उच्च वातावरण की आवश्यकता

शिक्षक – कृतघ्नता से मुक्ति पाने का उपाए मेरे अनुभव में तो, उच्च जीवनदायक वातावरण में वास करना है । मैं अपने ही जीवन की कई वर्ष पहले की एक घटना के द्वारा इस बात को स्पष्ट करूंगा । मैंने सन् 1907 में एम० ए० पास किया । तीस-इक्तीस वर्ष पहिले शिक्षा इतनी प्रचलित नहीं थी जितनी कि आज है । कोई विरला ही विद्यार्थी एम० ए० की परीक्षा में बैठता था । उस वर्ष हमारे प्रान्त में पहली बार ही चार विद्यार्थियों ने एम० ए० पास किया था और लगभग सभी समाचार पत्रों ने इस बात का उल्लेख किया, उनमें से एक लम्बे काल तक हमारी प्रान्तीय सरकार के चीफ सेक्रेटरी रहे । एम० ए० पास करना हममें से प्रत्येक के लिए ही गौरव की बात थी । अपनी परीक्षा का फल निकलने से पहले ही मैं अपने परम पूजनीय गुरु के जन्म महोत्सव में योगदान देने के लिए लाहौर चला गया था । मेरे पास होने का समाचार मुझे लाहौर के उस पवित्र वातावरण में निवास के दिनों में मिला । तार द्वारा अपनी सफलता का समाचार पाकर जिस प्रकार के भाव मेरे हृदय में उदय हुए, उनसे मुझे स्वयं बड़ा आश्चर्य हुआ । मेरा हृदय उस तार को पाते ही अपने सहस्रों उपकारियों के प्रति झुक गया । मेरे सम्मुख उन सहस्त्रों किसानों की छवि घूमने लगी जिन्होंने मेरे और अन्य जनों के लिए हल चला कर अन्न उपजाया । मेरा ध्यान उन सब कारीगरों, शिल्पकारों, बढ़ईयों , मजदूरों तथा ठेकेदारों की ओर गया, जिनके बनाए हुए मकानों में मुझे रहने का अवसर मिला । मेरा हृदय उन सार्वजनिक संस्थाओं तथा टैक्स देने वाले के प्रति नम्रता से भर गया कि जिन्होंने स्कूलों और कालिजों को स्थापित किया और उन शिक्षकों, पुस्तक रचयिताओं तथा लेखकों के प्रति भी, जिन्होंने अपने परिश्रम से मेरे मस्तिष्क को ज्योतिर्मान किया । मुझे यह स्पष्ट रूप से प्रतीत हुआ कि इन लाखों सहायकों की सहायता के बिना मैं कदापि इतनी उच्च शिक्षा प्राप्त न कर सकता था । कृतज्ञता की यह पहली अनुभूति थी, जो इतने विशाल रूप में मेरे हृदय में उदय हुई । यह सब कुछ मेरे अपने प्रयत्न से नहीं हुआ था, अपितु यह उस वातावरण की ही कृपा थी, जिसने मेरे सम्मुख उपकारियों की लड़ी की लड़ी उपस्थित कर दी । इस वातावरण में साँस लेने से पहले मैं उन उपकारियों के उपकारों के कभी दर्शन न कर सका था । इस प्रकार उच्च वातावरण ने मेरे लिए उपकारों को अनुभव करना सुगम कर दिया और यही वातावरण औरों के लिए भी उपकारों की अनुभूति को सुगम कर सकता है ।

एक विद्यार्थी – यह वातावरण वास्तव में क्या वस्तु है ?

शिक्षक – यह वातावरण ज्योति और शक्ति सम्पन्न प्रभावों से संयुक्त होता है । जो इसमें श्वास लेते हैं वे ऐसी ज्योति प्राप्त करते हैं जो उनके आन्तरिक जीवन को असल रूप में दिखाती है ओर जो श्रद्धा और कृतज्ञता आदि के उच्च भावों की सुन्दरता के भी दर्शन कराती है । वह शक्ति जो इस वातावरण से मिलती है, वह अधिकारी मनुष्यों में विस्मयजनक उच्च परिवर्तन पैदा करती है ।

एक विद्यार्थी – क्या आप कृपा करके इस वातावरण के लाभों के विषय में कुछ उदाहरण देने की कृपा करेंगे ?

शिक्षक – अवश्य ! मैं बड़ी प्रसन्तना से आपके सम्मुख कुछ उदाहरण रखूँगा ।

एक नवयुवक ब्राह्मण को उसके पिता ने बड़े लाड़-प्यार से पाला था, उसे उच्च कोटि की शिक्षा दी थी और एक भद्र परिवार में उसका विवाह कर दिया था । यह नवयुवक अपनी पत्नी के प्रेम में इतना अन्धा हो गया था कि वह उसके विरुद्ध किसी से एक शब्द भी न सुन सकता था । एक बार दीवाली का त्योहार था । उसका पिता परिवार के लिए मिठाई खरीद कर लाया । उसके अतिरिक्त इस अवसर पर चिराग़ भी जलाए जाने थे और यह काम उस नवयुवक की पत्नी को सौंपा गया था । पिता ने, जो इस लड़की की लापरवाही को जानता था, कहा, "बेटी ! सावधानी से काम करना । ऐसा न हो कि घर के समान को, जो चारों ओर बिखरा पड़ा है, आग लग जाए ।" अब इन शब्दों में कोई बात आपत्तिजनक न थी परन्तु लड़के ने मेरे सम्मुख अपने अपराध का वर्णन करते हुए बतलाया कि वह उस समय आपे से बाहर हो गया । उसने अपने पिता से कहा, 'यदि आपको मेरी पत्नी पर विश्वास नहीं है तो आप स्वयं जाकर वह काम कर लीजिए ।" पिता के हृदय पर गहरा आघात लगा और उसने लड़के को उसके अपमानमूलक बर्ताव के लिए खूब लताड़ा । बेटे ने और भी अधिक गुस्ताखी से जवाब दिया । इस पर बाप ने उसे एक चपत लगा दी । ऐसा करना था कि लड़के ने अपने पिता की बाँह को इस ज़ोर से काटा कि एक माँस का टुकड़ा अलग कर दिया । बाप ने दोनों हाथों से उसे उपर उठाया और निकट ही जमीन पर दे मारे कि उसका पैतृक प्रेम उमड़ आया और उसने लड़के से

कहा, "मेरे बेटे ! मैं चाहूँ तो तुम्हें अभी मार सकता हूँ, परन्तु मैं ऐसा कर नहीं सकता । यद्यपि तुम तो मेरे सम्बन्ध में पूरे पिशाच बन गए हो ।" आधी रात के समय तक भी जब पिता को शारीरिक पीड़ा और हार्दिक यंत्रणा के कारण नींद न आई तो उसकी पत्नी (लड़के की मां) उसकी चारपाई के पास घुटने टेक कर इस दुख से कातर हो कर रोती रही कि उसने एक ऐसे कपूत को जन्म दिया । बेटा यह सब कुछ देखता रहा परन्तु उसने कोई पश्चात्ताप नहीं किया । कई वर्षों के अनन्तर उसे इस उच्च वातावरण में श्वास लेने का अवसर मिला और वह दृश्य देखने योग्य था, कि किस प्रकार वह अपने पिता के साथ किये हुए निकृष्ट व्यवहार को स्मरण करके बिलख-बिलख कर रो रहा था । उसने दुख और पश्चात्ताप के कई पत्र अपने पिता की सेवा में लिखे और छुट्टी लेकर अपने पिता की सेवा करके अपने हृदय को शान्त किया । यह था उच्च वातावरण का चमत्कार, जिसने उसकी कृतघ्नता को असल रूप में उस पर प्रकट कर दिया और उसको अपने हृदय को शुद्ध करने तथा कृतज्ञता को विकसित करने के योग्य बना दिया ।

इससे भी अधिक करुणाजनक एक और लड़के की कहानी है, जिसने अपने भाइयों को साथ मिलाकर अपनी माँ को भूखों मार देने की ठान ली थी । इन तीनों भाइयों में से एक का विवाह हो चुका था और उसकी पत्नी की अपनी सास से नहीं बनती थी । तीनों भाइयों ने अपनी माँ की हत्या कर डालने का निश्चय कर लिया । एक बार माँ बीमार हो गई । तब उन्होंने किसी डाक्टर को बुलाने से इन्कार कर दिया और जब वह अत्यन्त रोगी अवस्था में चारपाई पर पड़ी हुई थी तो तीनों भाई चुपचाप वहाँ से खिसक गए और बाहर से दरवाज़े को ताला लगा गए ताकि जब वे चार-पाँच दिन में वापिस लोटें तो अपनी माँ को मरा हुआ पाएँ और इस प्रकार उससे छुटकारा मिल जाए । इन भाइयों में से एक को सौभाग्य से हमारी समाज के एक कार्य क्षेत्र में एक सभा में जाकर उपदेश सुनने का अवसर प्राप्त हुआ । सभा अभी समाप्त भी नहीं हो पाई थी, कि वह अश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ अपने गाँव को दौड़ा गया, ताकि वहाँ तुरन्त पहुँच कर अपनी माता के प्राण बचा सके । सौभाग्यवश वह माँ के मरने से पहले वहाँ पहुँच गया । डॉक्टरी चिकित्सा और सेवा-शुश्रूषा के द्वारा उसकी माँ स्वस्थ हो गई और उसके हर्ष की सीमा न रही । इस प्रकार एक व्यक्ति जो अपनी माँ को निर्दयता से भूखों मार देने का निश्चय कर चुका था, अपने इस महा अपराध को घृणित रूप में देखने के योग्य बन गया और उसने माँ के प्राण बचा कर और उसके अनन्तर आयुपर्यन्त उसकी सेवा करके सच्ची तृप्ति लाभ की ।

एक विद्यार्थी – यह दृष्टांत बहुत ही हृदय स्पर्शी है । क्या आप कृपा करके कुछ उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के भी दृष्टांत देंगे, जिन्होंने इस वातावरण से लाभ उठाया हो ?

शिक्षक – आप लोग शिक्षा को अनुचित महत्व देते हैं । शिक्षित हो अथवा अशिक्षित, मनुष्य आखिर मनुष्य है । वे सभी अल्पाधिक नीच भावों के दास हैं । तो भी मैं आपकी इच्छानुसार शिक्षित जनों के भी उदाहरण दिए देता हूँ ।

एक उच्च-शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति, जो कालिज में प्रोफ़ेसर है, जब नाबालिग ही था, तो उसका पिता उसकी बहन को तथा उसकी माँ को उनके भाग्य पर छोड स्वयं किसी दूर के स्थान पर चला गया । उसकी गरीब माँ के ऊपर सारे गृहस्थ का भार आ पड़ा । इस लड़के ने बड़े उत्साह से अपनी माँ के कामों में उसका हाथ बटाया । अपने पिता से वह स्वाभाविक ही नाराज था, क्योंकि वह उन्हें संकटमय अवस्था में छोड़कर चला गया था । इस बात को वर्षों बीत गए । उस नवयुवक को इस वातावरण में निवास करने का शुभ अवसर मिला, जिस वातावरण की हम चर्चा कर रहे हैं । थोड़े ही समय में नवयुवक के जीवन में एक सुन्दर और हितकर परिवर्तन देखने में आया । अपने पिता से पाए हुए सब कष्टों को वह भूल गया । उसे अब यही अनुभव होता था कि पिता से ही उसका सारा अस्तित्व प्रकट हुआ है । पिता ने ही वर्षों तक उसे पाला है । कृतज्ञता की एक लहर उसने अपने हृदय में उठती हुई अनुभव की । पिता के सम्बन्ध में उसका हृदय पिघल गया और उसने पिता से मेल स्थापन करने का निश्चय कर लिया । उसने अपने पिता को कई पत्र लिखे जिनमें पिता के उपकारों को स्मरण किया और परस्पर संधि-याचना की । फिर वह उस नगर में पहुँचा, जहाँ उसका पिता रहता था और उसे एक बार फिर अपने घर ले आया, जिस घर से वह अपनी इच्छा से ही निर्वासित हो गया था । इस प्रकार इस उच्च वातावरण के द्वारा उस शिक्षा प्राप्त नवयुवक के हृदय से सारी दूरी, घृणा और दुःख नष्ट हो गए ।

विद्यार्थी – यह दृष्टान्त निस्सन्देह बहुत प्रभावशाली है ।

शिक्षक – निस्सन्देह ! अब मैं आपको एक और घटना एक शिक्षित व्यापारी की सुनाता हूँ । इस व्यक्ति का अपने पिता से कुछ

झगड़ा था, जो धीरे-धीरे इतना बढ़ गया कि पिता के प्रति उसके स्नेह का मानों अन्त हो गया । झगड़े का कारण यह था कि पिता इस लड़के से उसके छोटे भाई की सहायता करवाना चाहता था, जो संकट में था । इस बेटे ने यह कह कर इन्कार कर दिया, कि वह पहले ही अपने भाई की बहुत सहायता कर चुका है । पिता को इससे बहुत आघात लगा । छोटे और निर्धन बेटे के स्नेह ने उसे बहुत चिन्ताग्रस्त कर दिया । धनी लड़का उसकी एक न सुनता था । संयोगवश पिता और पुत्र एक ऐसे स्थान में पहुँचे जो हमारी समाज का कार्यक्षेत्र था । पुत्र को एक सभा में योग देने का अवसर मिला । वह इतना प्रभावित हुआ कि पिता के सम्बन्ध में उसने अपने आप को बहुत कृतघ्नता और स्नेहशून्य अनुभव किया । सभा समाप्त होते ही वह अपने पिता के पास पहुंचा और उसके चरणों में गिरकर तथा रो-रो कर अपने कृतघ्नतामूलक व्यवहार के लिए क्षमा प्रार्थना की और पिता को विश्वास दिलाया कि वह उसकी इच्छा का पालन करेगा । वह यह कहने के लिए मजबूर हो गया, "प्रिय पिता जी ! धन के अनुचित मोह ने मेरे हृदय से आपके सब उपकारों को भुला दिया था । मैं भूल गया था कि मेरा यह सारा अस्तित्व आपकी ही देन है और आपकी ही कृपा से मैं वर्तमान समृद्धि की अवस्था तक पहुँचा हूँ । आप मुझसे जो आशा रखते थे, वह मुझे कृतज्ञता का ऋण समझ कर पूरी करनी चाहिए थी, फिर आप यही तो चाहते थे, कि मैं अपने ही भाई की सहायता करूं, जिससे मैं रक्त और स्नेह के सूत्र से जुड़ा हुआ हूँ और इसलिए जिसकी सहायता करना मेरा कर्त्तव्य है। मुझे खेद है कि कृतज्ञता के अभाव ने मुझे आप के सम्बन्ध में ऐसा कठोर बना दिया था । मैंने कृतघ्नता को भयंकर रूप में देखने का अवसर पाया है । आप मुझे आशीर्वाद दें कि मुझे वह ज्योति अधिक से अधिक प्राप्त हो जिसने कृतघ्नता का घृणित रूप देखने का सामर्थ्य मुझे दिया है ।"

अब आप लोग देख सकते हैं कि जब तक मनुष्य स्वार्थ से अंधा बना रहता है और उसके हृदय में कृतज्ञता का अंकुर नहीं फूटता, तब तक वह उपकारियों के उपकारों को देखने और अनुभव करने के योग्य नहीं होता । परन्तु यदि सौभाग्य से उसके हृदय तक ऐसी ज्योति की किरणें पहुँच सकें, जो उसकी इस अवस्था को घृणित रूप में दिखा सकें, तो वह भयभीत हो उठेगा और अपने भीतर कृतज्ञता के भाव को विकसित करने के लिए भरसक प्रयत्न करेगा ।

विद्यार्थी – हम जो अपने ही प्रयत्न से अपनी कृतघ्नता को घृणित रूप में नहीं देख सकते, इसका कारण क्या है ?

शिक्षक – एक आदमी जो कुएँ में गिर गया है, बिना किसी व्यक्ति की सहायता के क्योंकर बाहर आ सकता है ? फिर कुएँ में गिरे हुए व्यक्ति के भीतर यह आकाक्षां होती है कि वह किसी प्रकार बाहर निकल आए । इसलिए यदि कोई दयालु मनुष्य कुएँ में रस्सा फेंक दे तो वह उसे अपनी कमर में बाँध कर खींचने वाले आदमी को उसके काम में साथ देगा । परन्तु आध्यात्मिक दुनिया में एक-एक आदमी जो घोर आत्मिक पतन की अवस्था में पहुँचा हुआ है, न केवल यह कि अपनी अवस्था को सुधारने का आकांक्षी नहीं होता, अपितु उस पतन के गढ़े से भी कि जिसमें वह गिर चुका है, बाहर निकलने की आकांक्षा नहीं रखता । इसके विपरीत जो व्यक्ति अपनी सहायता से उसे निकालना चाहता है, उसके काम में भी रोड़ा अटकाता है । पिछली कहानी में पिता ने लड़के को यह दिखलाने का प्रयत्न किया था, कि वह कृतघ्न है, परन्तु लड़का उल्टा इससे बिगड़ गया और इसलिए कृतघ्नता के गढ़े में पड़ा रहा । उसे निकालने के लिए किसी और शक्ति की आवश्यकता थी । सबसे पहले यह आवश्यक था कि उसके भीतर उस गढ़े से निकलने की आकांक्षा जाग्रत होती, और यह आकांक्षा उसमें तभी जाग्रत हो सकती थी जब वह कृतघ्नता के गढ़े में पड़े रहना अपने लिए विनाशकारी अनुभव करता उसे एक नई जागृति की आवश्यकता थी । फिर यह जागृति प्रत्येक वातावरण में नहीं हो सकती थी । यह एक विशेष और अनुकूल वातावरण में ही हो सकती है।

अतएव उच्च जीवन में प्रवेश करने के लिए सबसे बड़ी शर्त यह उच्च तथा आध्यात्मिक वातावरण है । इस वातावरण के बिना पापी हृदय न तो अपने पाप का बोध प्राप्त कर सकता है, न अपनी अवस्था को भयानक और घिनौने रूप में देख सकता है और न उससे उद्धार पाने का आकांक्षी हो सकता है । यह अलौकिक वातावरण अधिकारी मनुष्यों में उपरोक्त नीच अवस्था से निकलने की केवल आकांक्षा ही पैदा नहीं करता, प्रत्युत उससे निकलने का बल भी प्रदान करता है । जिनको लगातार ऐसे वातावरण में श्वास लेने का अवसर मिलता है, उनको अपने जीवन में उच्च बोधों को पैदा करके अपने सम्बन्धों को स्वर्गीय बनाने का सर्वोत्तम अवसर प्राप्त है ।

एक विद्यार्थी – उच्च वातावरण के अतिरिक्त क्या अधिकारी मनुष्यों के लिए कोई साधन भी आवश्यक है ?

शिक्षक – जी हाँ ! हमारी समाज में विविधि सन्बन्धों को हितकर और कल्याणकारी बनाने के लिए विशेष दिन नियत किए गए हैं, जैसे माता-पिता और सन्तान के सम्बन्ध को हितकर बनाने के लिए कुछ खास दिन होते हैं, इत्यादि । इन सब दिनों में ऐसे

उपकारियों के प्रति कि जिनसे हम लगातार उपकार पाते रहते हैं, कृतज्ञता भाव को विकसित करके उनके साथ अपने सम्बन्ध को प्रगाढ़ करने पर बहुत जोर दिया जाता है ।

एक विद्यार्थी— क्या माता-पिता और शिक्षकों के अतिरिक्त भी हमारे कोई उपकारी होते हैं ?

शिक्षक — भौतिक जगत, उद्भिज जगत, पशु जगत और मनुष्य जगत, सभी में हमारे लाखों उपकारी हैं । आप कल्पना कर सकते हैं कि यदि वायुमण्डल न होता, पानी न होता, धूप न होती तथा पृथ्वी आदि न होते, तो हमारा क्या हाल होता ? फिर यदि उद्भिज जगत न होता तो हम कहाँ होते ? शाकाहारी तथा मांसाहारी दोनों ही प्रकार के प्राणी नष्ट हो जाते । यह उन असंख्य उपकारों के अतिरिक्त है जो हम उद्भिज जगत से पाते है । पशु जगत के लाखों जीव आज भी हमारी सेवा कर रहे हैं और मनुष्य जगत की प्रत्यक्ष और परोक्ष सहायता के बिना तो हमारा अस्तित्व ही इस संसार में न होता । सच तो यह है कि हम प्रति दिन लाखों अस्तित्वों से अपने शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास में सहायता पा रहे हैं । कमी इस बात की है कि हम उन्हें देखने की आँख नहीं रखते । यदि किसी मनुष्य में कृतज्ञता का भाव उदय हो जाये तो उसके हर्ष की सीमा न रहेगी । इस बात से दुखी होने की बजाए कि उसके कुछ शत्रु भी हैं वह इसी बात को अनुभव करके धन्य-धन्य होता रहेगा कि शत्रुओं की अपेक्षा उसके उपकारी मित्र अधिक हैं ।

इसलिए जिस भाव की सबसे बड़ी आवश्यकता है वह कृतज्ञता का भाव है और कृतज्ञता की आँख पैदा करने के लिए उच्च और धार्मिक वातावरण की आवश्यकता है । कदाचित् आप सब को इसकी प्राप्ति हो सके ।

9. श्रद्धा तथा कृतज्ञता द्वारा दूसरों की निःस्वार्थ सेवा

शिक्षक – मैं इससे पहले दो श्रेष्ठ भावों अर्थात् श्रद्धा और कृतज्ञता के विषय में वर्णन कर चुका हूँ । तीसरा श्रेष्ठ भाव, जिसके विषय में मैं आज वर्णन करूंगा, वह सेवा का भाव है । यह भी एक अत्यन्त आवश्यक भाव है, जो विविध सम्बन्धों में हमारे जीवन को मधुर और रसमय बना सकता है । वास्तव में कुछ देकर ही हम कुछ प्राप्त कर सकते हैं ।

एक विद्यार्थी – सेवा से आपका क्या अभिप्राय है ?

शिक्षक – सेवा से मेरा अभिप्राय निःस्वार्थ सेवा से है । हमें दूसरों की अपेक्षा अपने ही सुखों का अधिक ध्यान रहता है । अपने ही किसी सुख की तृप्ति करने के लिए हम न केवल दूसरों के अधिकारों का हनन करते हैं अपितु उनको हानि पहुँचाने के लिए भी तैयार रहते हैं । यह अपनत्व या स्वार्थ का भाव हमें निर्दयी बना देता है । इससे पहले जिन दो श्रेष्ठ भावों के विषय में मैं बता चुका हूँ, वह दोनों भाव भी स्वार्थ से उद्धार पाने में हमारी सहायता करते हैं ।

विद्यार्थी – क्या आप हमें यह समझाने की कृपा करेंगे कि श्रद्धा और कृतज्ञता के द्वारा हम स्वार्थ से निकलने के योग्य कैसे हो सकते हैं ?

शिक्षक – इन गुणों का आधार ही परोपकार है । श्रद्धा के द्वारा किसी व्यक्ति के उच्च जीवन की सुन्दरता को हम देखने के योग्य होते हैं और उसकी तुलता में हमें अपना जीवन तुच्छ अनुभव होता है । श्रद्धा का भाव हमें श्रद्धाभाजन की महिमा के गीत गाने के लिए प्रेरित करता है और इसके साथ ही हमें अपनी त्रुटियाँ भी दिखाई देती हैं । यह भाव हमें ऐसे उच्च जीवनधारियों की सेवा करने का आकांक्षी बना देता है । इसलिए स्वाभाविक ही हम अपनत्व के घेरे से बाहर आने के योग्य बनते हैं । मैं आपको आँखों देखी घटनाएँ सुनाकर इस सत्य को स्पष्ट करूंगा ।

जब मैं कालिज में पढ़ता था, तो मैं एक ऐसे व्यक्ति के सम्पर्क में आया जिसने सिक्ख मत के प्रचार के हेतु अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था । उसने एक गुरुद्वारा बनवाया और अपना सारा जीवन उसी की सेवा में लगा दिया । वह बहुधा पंजाब में आया करता था और सिक्ख मत के लिए उसके प्रेम और उत्साह को देख कर बड़े-बड़े गुरुद्वारों में उसका हार्दिक स्वागत किया जाता था । एक नवयुवक के भीतर उसके लिए श्रद्धा उत्पन्न हुई । वह नवयुवक दुकान करता था और उसका काम अच्छा चलता था, परन्तु उसके हृदय में इस व्यक्ति के लिए जो श्रद्धा का भाव जागृत हो चुका था उसने उसके भीतर ऐसा परिवर्तन ला दिया था कि वह प्रतिदिन अपने श्रद्धाभाजन के दर्शन और उसकी सेवा के बिना सन्तुष्ट नहीं होता था । जब उसके विवाह का प्रश्न उठा, तो क्योंकि यह सिक्ख प्रचारक उसे भी अपने प्रिय लक्ष्य में लगाना चाहता था, इसलिए उसने विवाह को भी त्याग दिया । कितने ही वर्षों तक उसका व्यापार बड़ी सफलता से चलता रहा, परन्तु उसकी आय का अधिकांश भाग सिक्ख प्रचारक की सेवा में ही अर्पण होता रहा । जब इस प्रचारक का देहान्त हो गया तो उसके शिष्य ने अपना शेष जीवन इस प्रचारक के गुरुद्वारे और इसके परिवार की सेवा में ही व्यतीत किया । इस प्रकार श्रद्धा के भाव ने उसे स्वार्थ के संकुचित घेरे से बाहर निकालने के योग्य बना दिया ।

विद्यार्थी – यह कहानी बहुत शिक्षाप्रद है ।

शिक्षक – निस्सन्देह ! अब मैं आपको दूसरी कहानी सुनाता हूँ । इस शताब्दी के प्रारम्भ में एक ऐसी घटना हुई जो अमिट छाप मेरे हृदय पर छोड़ गई । एक युवक कॉलिज में पढ़ता था, जिसका स्वभाव बहुत श्रेष्ठ और मधुर था । अचानक यह सुनने में आया कि एक चरित्रहीन और प्रसिद्ध शराबी इस सदाचारी युवक के प्रति आकर्षण अनुभव करने लगा है । जब लोगों में इसकी चर्चा होने लगी तो लड़के के सम्बन्धियों ने इस शराबी को पीटा, परन्तु वह सदैव यही कहता था कि मेरा इरादा लड़के को कोई हानि पहुँचाने का नहीं है । मैं तो केवल उसके दर्शनों का अभिलाषी हूँ । नवयुवक केवल सदाचारी और उत्साही ही नहीं अपितु दयालु भी था । एक दिन वह ढूंढता-ढूंढता इस शराबी के पास पहुंचा और उससे कहा, "तुम्हारा मेरे प्रति आकर्षण मेरी और मेरे परिवार की बदनामी का कारण बन गया है । मुझे तुमसे सहानुभूति है । परन्तु यह तो बताओ कि तुम मुझसे चाहते क्या हो ? यदि तुम्हारी इच्छाएँ उचित हुई तो मैं तुम्हारी सहायता करने का यत्न करूंगा ।" उस आदमी ने न जाने क्यों उत्तर दिया, "मैं आपके प्रति बहुत सम्मान अनुभव करता हूँ । जब आपके दर्शन कर लेता हूँ तो मुझे ऐसा अनुभव होता है कि मैं वह दिन

हर्षपूर्वक बिता सकता हूँ ।" लड़के ने कहा कि अच्छी बात है, मैं प्रतिदिन एक निश्चित समय पर एक निश्चित मार्ग से जाया करूंगा । तुम बैठ जाया करो, मेरे माता-पिता को अधिक चिन्ता में न डालो । धीरे-धीरे लोगों को यह प्रकट होने लगा कि उस व्यक्ति के जीवन में श्रेष्ठ परिवर्तन आता जा रहा है । सदाचारी लड़के ने उसके जीवन में दिलचस्पी लेनी आरम्भ की, जिससे वह शराब आदि बुराईयों से मुक्त हो गया और एक सचमुच का श्रेष्ठ व्यक्ति बन गया । लड़का भी यह जान गया था कि उस व्यक्ति का आकर्षण किसी नीच भाव को लेकर नहीं, श्रद्धा को लेकर था । एक बार यह लड़का जब एक दूर के स्थान में था तो उसे तार मिला, कि उसके भाई को हैजा हो गया है । लड़के ने इस व्यक्ति को जो इस पर श्रद्धा रखता था, तार द्वारा इसकी सूचना दी और उससे प्रार्थना की कि वह उस नगर में जाकर कि जहाँ उसका भाई बिमार है, सेवा करे । मुझे विश्वास है कि अभी भी कुछ व्यक्ति ऐसे जीवित होंगे, जो इस बात के साक्षी हैं कि वह आदमी अपने आप को भूलकर पूर्ण रूप से अपने श्रद्धाभाजन के भाई की सेवा में जुट गया । वह उसका मल भी अपने हाथों से साफ़ करता था । इस बात का उसे कुछ भी भय न था कि उसे भी यह बिमारी लग सकती है । उसका दिल खुशी से नाचता था कि उसे अपने श्रद्धाभाजन के परिवार की सेवा का अवसर प्राप्त हो गया । इस प्रकार श्रद्धा भाव ने न केवल उसे एक भला व्यक्ति बना दिया, अपितु उसे अपने आपको भुलाकर श्रद्धाभाजन की सेवा में लगने के लिए मजबूर कर दिया ।

एक विद्यार्थी – वह व्यक्ति वास्तव में ही बड़ा भाग्यशाली था कि उसके भीतर एक श्रेष्ठ व्यक्ति के प्रति श्रद्धा का भाव जागृत हो गया ।

शिक्षक – निश्चय ही ! एक तीसरी घटना भी जो मेरी आँखों देखी है, बहुत शिक्षाप्रद है । जिस स्थान में मैं अपना व्यवसाय करता था, वहाँ एक साधु रहता था । कहा जाता है कि एक स्त्री जो उसकी शिष्या बनी, पहले अच्छे चरित्र की नहीं थी । परन्तु उसके हृदय में उस साधु के प्रति श्रद्धा जागृत हो गई । साधु एक श्रेष्ठ चरित्र रखने वाला व्यक्ति समझा जाता था । वह स्त्री उसकी शिष्य मण्डली में शामिल हो गई और जीवन पर्यन्त उसकी तथा उसके शिष्यों की सेवा करती रही । साधु के देहान्त के पश्चात् वह जीवन पर्यन्त उसके मठ में रही । वह दृश्य देखने के योग्य होता था कि किस प्रकार वह प्रत्येक वार्षिक उत्सव पर एक माता की न्याई यात्रियों की सेवा करती थी । उसका सारा जीवन ही उस साधु और उसके कार्य और शिष्यों की सेवा के लिए ही अर्पण हो गया था । साधु के अनुयायी उसे स्वर्गिक माता के रूप में देखने लगे थे । इस प्रकार वह अपनत्व से निकल कर कम से कम अपने श्रद्धाभाजन के सम्बन्ध में परोपकार मूलक सेवा का भाव विकसित करने के योग्य हो गई ।

इन तथा अन्य बहुत-से उदाहरणों से आप अनुमान कर सकते हैं कि श्रद्धा का भाव हमें स्वार्थपरता की तंग और अन्धेरी कोठड़ी से निकालने और निःस्वार्थ सेवा के लोक में प्रवेश कराने में कितना सहायक होता है । जो मनुष्य इसके महत्व को नहीं समझते, वे यह प्रकट करते हैं कि वे उसके लाभों से पूर्णतः अज्ञानी हैं ।

विद्यार्थी – क्या कृतज्ञता से भी पर-सेवा की उत्पत्ति होती है ?

शिक्षक – जी हाँ !...... एक कृतज्ञ हृदय किसी से पाये हुए उपकारों की सुन्दरता को अनुभव करता है । वह अपने उपकारी को भी सुन्दर रूप में देखता है । उपकारी के प्रति उसका हृदय नम्र और कोमल हो जाता है । कभी-कभी उसके नेत्रों से आँसू भी टपकने लगते हैं । वह अपने आपको ऋणी अनुभव करता है । ऋणी होने का अनुभव उसके भीतर ऋण चुकाने की व्याकुलता पैदा करता है । इस ऋण के चुकाने में उसके हृदय में सौदाबाज़ी व दुकानदारी की भावना नहीं होती । जो उपकार उसने पाये हैं, उनके बदले में वह जो कुछ करता है, उसे बहुत तुच्छ समझता है । उपकारों का ऋण चुकाते-चुकाते उसका जी नहीं ऊबता । आपको यह समझने की आवश्यकता है कि कृतज्ञता कुछ और वस्तु है और सौदाबाज़ी या दुकानदारी कुछ और ।

विद्यार्थी – कृपा करके यह भेद भी हमें समझा दिजिए ।

शिक्षक – अवश्य ! कुछ वर्ष हुए मैं दसवीं कक्षा के विद्यार्थियों को कविता की पुस्तक पढ़ा रहा था । उसमें एक कविता ऐसी थी जिसने मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव छोड़ा । उसने यह भी स्पष्ट कर दिया कि कृतज्ञता और व्यापारिक मनोवृत्ति में क्या अन्तर है । उसमें एक व्यक्ति ने बताया था कि वह एक बार सड़क के किनारे बीमार पड़ा हुआ था । एक अहंकारी आदमी उसके पास से गुज़रा और उसने बड़े घमंड और लापरवाही से उसकी ओर कुछ नक़दी फेंकी और अपना रास्ता लिया । वह बताता है कि जब वह स्वस्थ हो गया तो वह यह नक़दी लेकर उस अहंकारी आदमी के पास गया और नक़दी उसे वापिस कर दी । ऐसा

करके उसने अनुभव किया कि उसने अपने सिर से एक भार उतार दिया है । यहाँ कृतज्ञता का कोई प्रश्न नहीं था । यह एक व्यापार का सा व्यवहार था । वह एक बार फिर इसी प्रकार बीमार पड़ गया । वह कहता है कि एक वृद्ध जोड़ा उसे अपनी कुटिया में ले गया और बड़ी प्रीति से उसकी सेवा की । जो कुछ उनके पास था उन्होंने उदारता से उसकी सेवा में लगाया । यद्यपि वे निर्धन थे, तथापि अपने हृदय में सहानुभूति का भाव रखते थे । जब यह अच्छा हो गया तो उसने कहा कि मैं उनके जड़ पदार्थों का, जो उन्होंने मेरी सेवा में खर्च किए, मूल्य तो दे सकता हूँ परन्तु जिस सहानुभूति से उन्होंने मेरी सेवा की, उसका मैं क्या मूल्य चुका सकता हूँ ? उसने ऐसा अनुभव किया कि कोई भी बड़ी से बड़ी वस्तु देकर वह उनके प्रेम और सहानुभूति का मूल्य नहीं चुका सकता था । इसी का नाम कृतज्ञता है । एक कृतज्ञ मनुष्य कुछ भी लौटा कर सन्तोष नहीं पाता ।

अब आपने समझ लिया होगा कि कृतज्ञता और व्यापारिक मनोवृति में क्या अन्तर है ।

विद्यार्थी – तब तो कृतज्ञता वास्तव में ही बड़ा सुन्दर भाव है ।

शिक्षक – निश्चय ही ऐसा है । यहाँ मैं केवल आपको यही दिखाना चाहता हूँ कि कृतज्ञता से हम अपने आपको भूलकर पर-सेवा में लगाने के योग्य होते हैं, यद्यपि यह सेवा अपने उपकारियों तक ही सीमित होती है । मैं आपको ऐसी एक और कहानी सुनाता हूँ ।

हमारे प्रान्त में एक सन्त गवैया है, जिसको लोग बहुत सम्मान की दृष्टि से देखते हैं । उसके गुरु भी एक गायनाचार्य और भले पुरुष थे । इस सन्त ने अपने गुरु से यह विद्या सीखी थी । यद्यपि वह सन्त अपने गुरु की अपेक्षा भी बहुत प्रसिद्ध हो गया है परन्तु उसके कृतज्ञ भाव ने गुरु परिवार के प्रति उसे बहुत दीन और सेवाकारी बना दिया है । उसके जीवन की एक घटना मुझे सुनने का अवसर मिला । एक बार उसे एक नगर में अपने गीतों के द्वारा लोगों को कृतार्थ करने के लिए निमन्त्रित किया गया । वह अपने गुरु की लड़की को भी अपने साथ ले गया । कहा जाता है कि जितनी देर वह वहाँ भजन गाता रहा उसने उस लड़की को अपने कन्धों पर बिठाए रखा । उस लड़की ने हाथी दाँत की चूड़ियों की माँग की । यह सन्त, जिस पर हजारों व्यक्ति श्रद्धा रखते थे, उस लड़की को कन्धों पर बिठाए तीन मील पैदल चलकर पास के एक नगर में गया और इस लड़की को चूड़ियाँ पहनाईं । जिस आदमी ने मुझे यह कथा सुनाई वह कहता था कि वह एक देवताओं के देखने के योग्य दृश्य था । पिछले कई वर्षों से वह सन्त नाना प्रकार से गुरु परिवार की सेवा करता और गुरु की महिमा के गीत गाता रहा है ।

आप में से बहुतों ने फ़िलास्फ़ी की उस जगत् विख्यात् पुस्तक "प्लैटों सम्वाद" (Plato's Dialogues) का नाम सुना होगा । उसमें सुकरात की शिक्षा का बड़ा ही महत्वशाली चित्रण किया गया है । प्लेटो (अफ़लातून) अपने गुरु सुकरात के लिए अगाध कृतज्ञता रखता था । और इसलिए यद्यपि सुकरात ने स्वयं अपनी शिक्षा के बारे में बहुत थोड़ा लिखा है, परन्तु उसके इस शिष्य ने सुकरात की शिक्षा को सुकरात के नाम से ही लिखकर हमारे लिए सुरक्षित कर दिया है । इस काम को पूरा करने में उसने अपने जीवन के कई वर्ष बिताए होंगे, परन्तु गुरु के प्रति उसके श्रद्धा भाव ने उसके अपनत्व को खो दिया और संसार को अपनी अमर रचना देते हुए भी उसने अपना यश नहीं चाहा । संसार को स्वयं ही इस बात की खोज करनी पड़ी कि उन सम्वादों का लेखक वास्तव में प्लैटो ही था । यदि प्लैटो में सुकरात के प्रति कृतज्ञता न होती, तो उसने सुकरात की शिक्षा को इस सुन्दरता और निपुणता से चित्रित करने का महा कठिन कार्य अपने सिर पर न लिया होता । किसी उपकारी या कृतज्ञता के पात्र व्यक्ति की सेवा करते हुए कृतज्ञ हृदय बड़े से बड़ा त्याग करने में आगा-पीछा नहीं देखता ।

विद्यार्थी – कृतज्ञ मनुष्य अपने उपकारी की सेवा कर्त्तव्य समझ कर करता है अथवा ऐसा करने में उसे आनन्द भी प्राप्त होता है ?

शिक्षक – यह एक बड़ा अच्छा प्रश्न है । परोपकार के भाव से की हुई प्रत्येक क्रिया मनुष्य को उसी प्रकार सुख प्रदान करती है, जिस प्रकार स्वार्थ की कोई क्रिया स्वार्थी को सुख देती है ।

विद्यार्थी – कृपया इसे उदाहरण देकर समझा दीजिए ।

शिक्षक – एक बार मैं अपने एक मित्र के परिवार में गया । मेरे मित्र तथा उनकी धर्मपत्नी दोनों की ही आयु लगभग 70 वर्ष से कुछ ऊपर थी । मेरे मित्र की पत्नी ने बातचीत करते समय मुझसे कहा, "क्या आप अपने मित्र (उसके पति) को यह प्रेरणा नहीं

कर सकते कि वे मुझे अपने लिए भोजन बनाने की अनुमति दे दें । वे मेरा आवश्यकता से अधिक ध्यान रखते हैं । वे यह समझते हैं कि बहुत वृद्ध होने के कारण मुझे भोजन बनाने में बहुत कठिनाई होगी ।" मैंने कहा, "आपको इसमें आपत्ति क्यों होनी चाहिए ?" इस पर अश्रूपूर्ण आँखों के साथ अपने हाथ की ओर संकेत करते हुए उस स्त्री ने कहा, "पच्चास वर्ष पहले उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा था और वह अब तक मेरे लिए सच्चे और सेवाकारी पति रहे हैं । तब क्या मेरे लिए यह कृतघ्नतापूर्ण बात न होगी, यदि मैं उनकी यह तुच्छ-सी सेवा भी न करूँ ?" उसके हृदय-स्पर्शी शब्दों ने मुझे हिला दिया । यह एक ऐसे कृतज्ञ हृदय की कहानी है जो इसीलिए दुखी था कि उसे सेवा का अवसर नहीं मिलता था । हमें यह जानने की आवश्यकता है कि कृतज्ञता एक बहुत श्रेष्ठ भाव या शक्ति है, अपनी तृप्ति करके ही यह शान्त हो सकती है और उसकी तृप्ति निःस्वार्थ सेवा में है । यदि मानव हृदय यह उपलब्ध कर सके कि यह भाव कैसा अलौकिक और हृदय को कोमल और सरस बनाने वाला है और इस प्रकार हमारे कितने ही दुखों का अन्त करके हित की उत्पत्ति करने वाला है तो वे इस भाव को विकसित करने के लिए गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगे । संसार में जो कुछ हार्दिक कठोरता, अन्याय तथा क्रूरता दिखाई पड़ती है, वह सब इसलिए है कि मनुष्य का हृदय स्वार्थी है और वह अपने ही सुखों की तृप्ति चाहता है । अगली बातचीत में परोपकार के विषय में विस्तारपूर्वक आपको बताऊँगा ।

10. परोपकार क्या है और उसकी क्यों आवश्यकता है

शिक्षक—आज मुझे आप से परोपकार अथवा पर-सेवा भाव के विषय में बातचीत करनी है । पर-सेवा क्या है ? स्वार्थपरता के बिल्कुल उलट पर-सेवा भाव है । स्वार्थ मनुष्य के ध्यान को अपने से बाहर नहीं जाने देता, परन्तु पर-सेवा का भाव मनुष्य को दूसरों के लिए सोचने और अनुभव करने के योग्य बनाता है । सात्विक भाव कई हैं । इनमें से जो अपेक्षाकृत अधिक मनुष्यों में पाये जाते हैं, वे दया, सहानुभूति, उदारता, क्षमाशीलता, जन-हितैषिता आदि-आदि हैं।

एक विद्यार्थी — परन्तु हमें परोपकारी बनने की क्यों आवश्यकता है ?

शिक्षक — परोपकारी बनने के पक्ष में एक बहुत बड़ी युक्ति यह है कि स्वार्थ का भाव, जो परोपकारी का विरोधी है, हमारा जीना भी दूभर कर देता है ।

विद्यार्थी — वह कैसे ?

शिक्षक — आप कल्पना करें कि यदि सूर्य स्वार्थी होता तो क्या होता ? हमें प्रकाश मिलना बन्द हो जाता । क्या ऐसी अवस्था में हम जीवित रह सकते थे ? पृथ्वी यदि हमें आश्रय न देती, तो भी क्या हम जीवित रह सकते ? वनस्पति जगत हमें अनाज, तरकारियाँ, फल आदि प्रदान न करता तो क्या हमारे लिए जीना सम्भव था ? अब सूर्य जो हमें ज्योति प्रदान करता है, उसके बदले में हमसे क्या लेता है ? पृथ्वी हमें आश्रय देकर उसके बदले में वह हम से क्या लेती है ? और वनस्पति जगत को अनाज आदि के बदले में हम से कौन-सी वस्तु प्राप्त हो जाती है ? कुछ भी नहीं । यदि सूर्य, पृथ्वी और वनस्पति जगत हम पर यह उपकार न करें तो भी उनकी सत्ता में कोई अन्तर नहीं आएगा । वे उस समय भी थे, जब मनुष्य प्रकट नहीं हुआ था । उन्हीं की सहायता से मनुष्य संसार में प्रकट हुआ है । अब आप अनुभव कर सकते हैं, कि स्वार्थपरता कितनी भयानक और परोपकार अथवा पर-सेवा कितनी कल्याणकारी है । अब आप यह भी कल्पना करें कि यदि भविष्य काल में सभी माताएँ अपने बच्चों के सम्बन्ध में स्वार्थी बन जाएँ, तो क्या हाल हो ? मानव जाति का इस पृथ्वी पर आस्तित्व ही न रहेगा, क्योंकि माताओं की सेवा के बिना किसी भी बच्चे का पालन न हो सकेगा । इसी प्रकार एक स्वार्थी सरकार जनता के लिए एक अभिशाप है, क्योंकि वह कर तो लेती है, परन्तु प्रजा के लिए करती कुछ नहीं । इसी भाँति स्वार्थी परिवार, समाज तथा स्वार्थी जाति स्वयं ही अपने पतन का हेतु बन जाते हैं । यह बात हम सभी जानते हैं कि कोई राष्ट्र उतनी ही उन्नति करता है जितनी कि उसमें पर-सेवा की भावना होती है और उसका उतना ही पतन होता है जितनी कि उसमें स्वार्थ की भावना होती है । इस बीसवीं शताब्दी में तो इस बात का हमें प्रत्यक्ष प्रमाण मिल सकता है कि अत्यधिक स्वार्थपरता स्वार्थी मनुष्य, स्वार्थी परिवार, स्वार्थी समाज और स्वार्थी राष्ट्र को नष्ट कर देती है । मनोविज्ञान ने इस सत्य को पूर्णतः सिद्ध कर दिया है । मुझे आशा है कि अब आप समझ गए होंगे कि स्वार्थपरता क्यों एक महा भयानक भाव है ।

विद्यार्थी — निस्सन्देह स्वार्थपरता अत्यन्त भयानक है । क्या आप सच्ची घटनाओं के द्वारा यह समझाने की कृपा कर सकते हैं कि स्वार्थपरता किस प्रकार एक अभिशाप बन जाती है ।

शिक्षक —SCIENCE GROUNDED RELIGION (विज्ञान मूलक धर्म – देव समाज का अंग्रेजी मासिक पत्र) में मैंने एक बार योरोपियन समाचार-पत्रों से ली हुई एक पाषाण हृदया स्त्री की कथा प्रकाशित की थी । यह स्त्री बहुत लोभी थी । उसने धन के लोभ में एक के बाद दूसरे कई धनाढ्य व्यक्तियों से विवाह किया और उनका घन हड़प करती गई । फिर उसने एक लखपति युवक से शादी की और उसका भी सारा धन ऐंठ लिया । एक दिन उसका पति किसी संकट में फँस गया और उसने इससे कुछ रुपया माँगा । इस स्त्री ने कोरा जबाब दे दिया । पति बेचारा संकट की अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हो गया। इस स्त्री का एक ही बेटा था । इसने लाखों-करोड़ों रुपये की मालिक होते हुए भी उस बेटे की मजबूर किया कि वह अपनी ही थोड़ी-सी कमाई से अपना निर्वाह करे । जब वह मरी तो अपने पीछे करोड़ों रुपया छोड़ गई परन्तु उसके बड़े हुए स्वार्थ ने उसे एक निर्दयी पत्नी तथा एक निर्दयी माता बना दिया । आप ही अनुमान करें कि स्वार्थ कितना भयंकर है ।

विद्यार्थी – निश्चय ऐसा ही है ।

शिक्षक – अब एक और कहानी सुनिए । एक धनाड्य आदमी के पास सवा लाख पौंड थे, तो भी यह अपनी स्त्री और बच्चों को पेट भर खाना भी मुश्किल से देता था । जब वह मर गया तो उसकी स्त्री बैंक से रुपया निकलवाने गई । परन्तु उसे बताया गया कि उसके पति ने सब रुपया पहले ही निकलवा लिया था । स्त्री यह सुनकर चकित रह गई । कुछ काल तक तो वह समझ न सकी कि उसके पति ने उस रुपये का क्या किया । फिर अचानक उसे ध्यान आया कि मरते समय उसके पति ने यह आकांक्षा प्रकट की थी कि उसका कोट उसके मृत शरीर के साथ ही दबा दिया जाए । उसे सन्देह हुआ कि रुपया अवश्य ही उस कोट में होगा । उसने अदालत से प्रार्थना की कि उसे पति के शव को बाहर निकालने की आज्ञा दी जाए । यह आज्ञा उसे प्राप्त हो गई । पुलिस की उपस्थिति में कब्र को खोद कर शरीर निकाला गया । जब कोट उतारा गया तो क्या देखते हैं कि वह सारा रुपया, जो बैंक से निकलवाया गया था, बड़ी सावधानी से उस कोट में सिला हुआ था । ओह ! स्वार्थ का भाव मनुष्य को कहाँ पहुंचा देता है ! स्वार्थी मनुष्य और तो और पत्नी और बच्चों के सम्बन्ध में भी कितना कठोर हो जाता है ! !

एक विद्यार्थी – क्या ऐसी घटनाएँ भी सम्भव हैं ?

शिक्षक – केवल सम्भव ही नहीं, अपितु आए दिन ऐसी घटनाएँ देखने में आती रही हैं । स्वार्थ मनुष्य को अपना ही शत्रु बना देत है और वह अपनी ही हानि करने के लिए मजबूर हो जाता है । मैं एक सुनार को जानता हूँ जिसने शिक्षा प्राप्त करके सरकारी नौकरी प्राप्त की और लाखों रुपया एकत्र किया । धन के मोह में वह इस कद्र बुरी तरह फंस चुका था कि वह जब सख्त बीमार हो गया तो उसने अपने बिस्तर की चादर भी इसलिए नहीं बदली कि उसे धोबी को पैसे देने पड़ेंगे । डॉक्टर को नहीं बलाया क्योंकि उसे फ़ीस देनी पड़ती थी और औषधि इसलिए सेवन नहीं की क्योंकि उसके खरीदने में धन खर्च होता था । प्रियजनों तथा सम्बन्धियों का सब कहना-सुनना व्यर्थ प्रमाणित हुआ । वह अपने ही लिए धन व्यय करने के लिए किसी प्रकार तैयार नहीं होता था । अपने आपको बचाना भी उसने स्वीकार न किया और आखिर मर ही गया । डाक्टरी चिकित्सा और औषधियों ने अवश्य उसकी जान बचा ली होती ।

विद्यार्थी – यह तो बहुत भयानक है !

शिक्षक – मैं इससे भी भयानक एक कहानी आपको सुनाता हूँ । यूरोप के एक करोड़पति की कथा है कि वह अपनी बैंक की किताब छाती से चिपटाए हुए भूखा मर गया । इस किताब के अनुसार बैंक में उसका लाखों रुपया जमा था । इतना धनी होते हुए भी वह स्वयं ही भूखा रहकर मर गया ।

ऐसे महा स्वार्थी लोग जब अपने ही बीवी-बच्चों, यहाँ तक कि अपने लिए भी कुछ खर्च नहीं कर सकते तो उनसे यह आशा रखनी मूर्खता है कि वे दूसरों की कुछ सहायता करेंगे । मैं एक घनाढ्य व्यक्ति की, जिसे मैं जानता था, सच्ची घटना सुनाता हूँ । उसका कोई पुत्र नहीं था, फिर भी वह मरते समय एक पैसा तक दान नहीं कर गया । वह हिन्दू था और हिन्दुयों में मरने से पहले अपने नाम से कुछ न कुछ दान करने का संस्कार चला आता है । जब यह आदमी अर्द्धचेतन अवस्था में था, तो उसकी स्त्री ने एक लाख रुपया दान में देने का संकल्प किया । इस मरते हुए व्यक्ति ने जब अपनी अर्द्धचेतन अवस्था में यह सुना, तो उससे घबराकर अपनी आँखें खोलों और कहा, "दान ? कदापि नहीं, कदापि नहीं । कौन कहता है कि मैं दान करता हूँ ? इतना कहना था कि वह बेहोश हो गया और मर गया । अब आप देखिए कि जब यह आदमी मर रहा था और भली भाँति जानता था कि सारा धन उसके पीछे रह जाएगा तो भी वह दान देने की बात को सहन न कर सका । ओह ! स्वार्थ का भाव मनुष्य के दिल और दिमाग को किस दयनीय अवस्था में पहुंचा देता है । अब आप समझ गए होंगे कि स्वार्थ मनुष्य को राक्षस बना देता है ।

विद्यार्थी – निस्सन्देह स्वार्थपरता बहुत ही विनाशकारी है ।

शिक्षक – स्वार्थ व्यक्तिगत रूप से ही नहीं, सामाजिक रूप से भी बहुत हानि पहुँचाता है । इसके भी मैं कुछ उदाहरण देता हूँ । एक गाँव में जिसमें प्रायः 100 घर थे, पाँच-छः डाकुओं ने एक घनाढ्य के घर में डाका डाला । गाँव के लोगों ने अपने-अपने घरों के भीतर से ताले लगा लिए और उनमें से कोई धनाढ्य व्यक्ति की सहायता को न आया। परिणाम यह हुआ कि डाकुओं ने केवल धनाढ्य का ही घर न लूटा अपितु और भी जितने घरों को लूट सकते थे, उन्हें सूर्योदय के समय तक लूटा । सब समाचार पत्र जिनमें यह खबर छपी, इस बात से सहमत थे, कि यदि गाँव के सब लोग मिल-जुलकर डाकुओं का मुक़ाबला करते तो

उनमें से कोई भी न लूटता । परन्तु क्योंकि सब स्वार्थी पड़ोसी अपने आपको बचाने का ध्यान करते रहे, इसलिए उनमें से बहुत सारे लूट गए । यह घटना बताती है, कि जब प्रत्येक जन स्वार्थी होने के कारण अपने ही लाभ को देखता है तो सभी का परिणाम बुरा होता है ।

इसके विपरीत मुझे एक और घटना का भी पता है । हमारे नगर के निकट के एक गाँव में डाकू एक धनाढ्य के घर में घुस आए । गाँव के नम्बदार ने अपने पहलवान लड़के को आज्ञा दी कि वह जाकर अपने पड़ोसी की सहायता करे । यह बलवान लड़का डाकुओं पर टूट पड़ा और दूसरों ने भी उसको देखकर ऐसा ही किया । फिर क्या था, आन की आन में डाकू घेर लिए गए और उनको कठोर दण्ड दिया गया । एक अकेले आदमी के आत्म-त्याग ने सारे गाँव को डाकुओं के अत्याचार से बचा लिया ।

भारतवर्ष का सारा इतिहास पुकार-पुकार कर कह रहा है कि किस प्रकार स्वार्थ ने राजाओं को एक-दूसरे से फाड़े रखा और किस प्रकार एक विदेशी आक्रमणकारी ने थोड़ी-सी सेना के साथ उन सब को परास्त कर डाला ।

यही नीच स्वार्थ हमारे बड़े-बड़े व्यापारों का नाश कर देता है । जहां कहीं भी इसका हाथ पड़ता है, वहीं विनाश की लीला देखने में आती है ।

एक विद्यार्थी – इससे तो यह पूर्णतः प्रत्यक्ष है कि स्वार्थ व्यक्तिगत जीवन की ही नहीं, सामूहिक जीवन की भी महा हानि करता है ।

शिक्षक – निश्चय ! इसके विरुद्ध परोपकार से न केवल किसी व्यक्ति को ही हर्ष और उच्च शान्ति प्राप्त होती है, प्रत्युत सामाजिक जीवन की भी बहुत उन्नति और पुष्टि होती है । इसके भी कुछ उदाहरण सुनिए । मैंने एक ऐसी स्त्री की कहानी पढ़ी थी, जिस का जीवन दुखों से भरा हुआ था । उसने एक भद्र और धनाढ्य व्यक्ति से विवाह किया । उसके दो लड़के पैदा हुए । एक दिन जब उसका बड़ा बच्चा जो प्रायः पाँच वर्ष का था खेल रहा था, तो वह अकस्मात् गिरा और मर गया । इस स्त्री के लिए अब जीना दूभर हो गया । महीनों तक वह असह्य वेदना में से गुजरती रही । अभी यह घाव भरा नहीं था, कि उसका दूसरा बेटा भी मर गया । उसके दुख की सीमा न रही । वह बेजान सी हुई प्रतीत होती थी । कुछ मास पश्चात्, जब उसे ज्ञात हुआ कि उसे फिर बच्चा होने वाला है, तो उसे कुछ धैर्य प्राप्त हुआ । उसने एक लड़की को जन्म दिया । दो या तीन वर्ष के पश्चात् उसके एक और लड़की उत्पन्न हुई । अब वह प्रसन्न थी । जब लड़कियाँ बड़ी हुई तो वह उन्हें विवाह न करने की प्रेरणा करती थी, क्योंकि विवाह करके वे उसके पास नहीं रह सकती थीं और उनका वियोग वह सह न सकती थी । परन्तु एक के बाद दूसरी, दोनों लड़कियाँ विवाह करके उसे छोड़ गई । दुर्भाग्य से वे दोनों लड़कियाँ भी मर गईं । यह स्त्री अब पागल की न्याई खोई हुई सी फिरती थी । कहीं शान्ति प्राप्त न होती थी । ऐसे ही दारुण दुख की अवस्था में वह अपनी एक सहपाठिन से मिलने गई, जो एक स्थानीय पाठशाला की मुख्य अध्यापिका थीं । दुखों से खाई हुई इस स्त्री को यह स्थान एक शान्ति-निकेतन प्रतीत हुआ । उसने एक या दूसरी लड़की की छोटी-मोटी सेवा करनी आरम्भ की । एक सप्ताह के पश्चात् उसने और कितनी ही सेवायों का भार स्वयं ही अपने ऊपर ले लिया । एक-दो मास के अनन्तर ही उसके जीवन की सारी काया ही पलट गई । पाठशाला को जहाँ एक त्यागमयी माता प्राप्त हो गई, वहाँ इस स्त्री को दूसरों के दुख में अपने दुख को भूल जाने का स्वर्गीय लाभ प्राप्त हो गया । आप देख सकते हैं कि दुखों के अत्यन्त गहरे घाव भी पर-सेवा के मरहम से भर जाते हैं ।

एक दिन मैंने एक ऐसी लड़की की कहानी पढ़ी, जो देखने में अधिक सुन्दर न थी और जिसका विवाह एक सुन्दर परन्तु चक्षुहीन धनाढ्य पुरुष से हो गया था । इस लड़की को अपने पति की दिन-रात सेवा करने में आनन्द प्राप्त होता था । एक दिन नेत्र रोगों का एक विशेषज्ञ उनके नगर में आया । इस नेक स्त्री ने अपने पति को डाक्टर को दिखाया । डाक्टर ने उसकी चिकित्सा आरम्भ की । सौभाग्यवश इस धनाढ्य चक्षुहीन व्यक्ति की आँखें ठीक हो गईं । उसने इससे पहले अपनी पत्नी को कभी नहीं देखा था । केवल उसके अच्छे स्वभाव से ही कल्पना-कल्पना में यह अनुमान लगाया था कि वह एक बहुत सुन्दर स्त्री होगी । अब जब उसकी आँखें ठीक हो गईं तो उसने नर्स को भेजकर अपनी पत्नी को बुलाया, उसकी पत्नी पास ही खड़ी थी, परन्तु ऐसे साधारण वस्त्रों में थी कि वह सोच भी न सकता था कि यही स्त्री उसकी पत्नी है । जब नर्स ने कहा कि तुम्हारी पत्नी यही है तो वह भौंचक्का रह गया । उसकी पत्नी भयभीत होकर दौड़ी-दौड़ी अस्पताल से बाहर निकल गई । रास्ते में एक मोटर से टकरा कर वह मूछित हो गई । कुछ भले आदमी उसे अपने घर ले गए और उसकी सेवा की । कई दिन की सेवा-शुश्रूषा और चिकित्सा के पश्चात् वह ठीक हो गई । उन भद्र लोगों के घर में कोई सन्तान नहीं थी इसलिए उन्होंने इस लड़की को अपनी पुत्री बनाकर रखना चाहा, परन्तु इसने इन्कार कर दिया और उनसे प्रार्थना की कि अन्धों के अस्पताल में ही उसके लिए किसी सेवा के काम का प्रबन्ध कर दिया जाए । इस प्रकार उसने अपने दुख को अन्धों की सेवा में भुला देना चाहा और इसमें वह सफल हुई । परोपकार जीवन के सांघातिक दुखों का भी अन्त कर देता है ।

जब यह परोपकार की भावना शक्ति रूप में विकसित हो जाती है, तो यह आश्चर्यजनक फल उत्पन्न करती है । "विज्ञान मूलक धर्म" पत्रिका में एक अमरीकन करोड़पति की कहानी प्रकाशित की गई थी जिसके लिए परोपकार जान और प्राण की वस्तु थी । उसने गुप्त-दान देने के लिए कई संस्थाएँ स्थापित कीं । जब वह वृद्ध हो गया और फिर भी उसके पास बहुन-सा धन बच गया, तो उसने एक आफ़िस खुलवाया, जिसमें बीस क्लर्क काम करते थे और जिनका ध्येय पत्र व्यवहार के द्वारा ऐसे केन्द्रों की खोज करना था कि जहाँ वह अपने धन से लोक-हितैषी संस्था की स्थापना कर सके । लाखों मनुष्य धन एकत्र करने के लिए तो दफ्तर खोलते सुने जाते हैं, परन्तु यह एक ऐसा अनोखा व्यक्ति था कि जिसने इतना बड़ा दफ्तर, जिसमें बीस व्यक्ति काम करते थे, इसी लिए नहीं खोला कि धन एकत्र किया जाए, किन्तु इसलिए कि धन वितरण किया जाए । ऐसे जन न केवल निःस्वार्थ सेवा के स्वर्गीय आनन्द का ही भोग करते हैं, अपितु घुला-घुला कर मारने वाली उन चिन्ताओं से भी मुक्ति पाते हैं, जो उन तथाकथित साँपों की तरह होती हैं, जो किसी के काम न आने वाले और निरर्थक धनागारों पर पहरा देते हैं । अतः परोपकार ही मनुष्य जीवन की सर्वोत्तम और उज्ज्वलतम कान्ति है ।

oooooooooo